

और इनने गहन ग्रन्थ का विवेचन सहजगम्य बन सका । मैं उक्त सभी विद्वानों का अमीम कृतज्ञता के साथ आभार मानता हूँ ।

श्रद्धेय श्री मरुवरकेसरीजी महाराज का समय-समय पर मार्गदर्शन, श्री रजत-मुनिजी एवं श्री मुकनमुनिजी की प्रेरणा एवं साहित्य समिति के अधिकारियों का सहयोग, विशेषकर समिति के व्यवस्थापक श्री सुजानमल जी सेटिया की सहृदयता पूर्ण प्रेरणा व सहकार से ग्रन्थ के संपादन-प्रकाशन में गतिशीलता आई है, मैं हृदय से आभार स्वीकार करूँ—यह सर्वथा योग्य ही होगा ।

एक भाग के साथ कर्मग्रन्थ के छह भागों में जैन कर्मशास्त्र का समग्र विवेचन सम्पन्न हुआ है । छटा भाग सबसे बड़ा भी है और महत्त्वपूर्ण भी । इसमें पारिभाषिक शब्द-कोष, पिण्डप्रकृति सूचक शब्द-कोष तथा प्रयुक्त सहायक ग्रन्थ-सूची का समावेश हो जाने से इसकी उपयोगिता और भी बढ़ गई है ।

विवेचन में कहीं त्रुटि, सैद्धान्तिक भूल, अस्पष्टता तथा मुद्रण आदि में त्रुटि रही हो तो उसके लिए मैं क्षमाप्रार्थी हूँ और हंस-बुद्धि पाठकों से अपेक्षा है कि वे स्नेहपूर्वक सूचित कर अनुश्रुति करेंगे । भूल सुधार एवं प्रमाद-प्रतिहार में सहयोगी बनने वाले अभिनन्दनीय होते ही हैं । वस इसी अनुरोध के साथ—

विनीत

श्रीचन्द सुराना 'सरस'

जैनदर्शन में कर्म का बहुत ही विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। कर्म का सूक्ष्मातिगूक्ष्म और अत्यन्त गहन विवेचन जैन आगमों में और उत्तरवर्ती ग्रन्थों में प्राप्त होता है। वह प्राकृत एवं संस्कृत भाषा में होने के कारण विद्वद्भोग्य तो है, पर साधारण जिज्ञासु के लिए दुर्बोध है। थोकेड़ों में कर्मसिद्धान्त के विविध स्वरूप का वर्णन प्राचीन आचार्यों ने गूँथा है, कंठस्थ करने पर साधारण तत्त्व-जिज्ञासु के लिए अच्छा ज्ञानदायक सिद्ध होता है।

कर्मसिद्धान्त के प्राचीन ग्रन्थों में कर्मग्रन्थ का महत्त्वपूर्ण स्थान है। श्रीमद् देवेन्द्रसूरि रचित इसके पाँच भाग अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें जैनदर्शन-सम्मत समस्त कर्मवाद, गुणस्यान, मार्गणा, जीव, अजीव के भेद-प्रभेद आदि समस्त जैनदर्शन का विवेचन प्रस्तुत कर दिया गया है। ग्रन्थ जटिल प्राकृत भाषा में है और इसकी संस्कृत में अनेक टीकाएँ भी प्रसिद्ध हैं। गुजराती में भी इसका विवेचन काफी प्रसिद्ध है। हिन्दी भाषा में इस पर विवेचन प्रसिद्ध विद्वान् मनीषी पं० मृणाल जी ने लगभग ४० वर्ष पूर्व तैयार किया था।

नवमान में कर्मग्रन्थ का हिन्दी विवेचन दुष्प्राप्य हो रहा था, फिर इस समय तक विवेचन की जैली में भी काफी परिवर्तन आ गया। अनेक तत्त्व-जिज्ञासु मुनिगण एवं श्रद्धालु श्रावक परमश्रद्धेय गुरुदेव महेश्वरकेसरी जी महाराज साहब से कई वर्षों से प्रार्थना कर रहे थे कि कर्मग्रन्थ जैसे विशाल और गम्भीर ग्रन्थ का नये ढंग में विवेचन एवं प्रकाशन होना चाहिए। आप जैसे समर्थ साध्वन विद्वान् एवं महाराश्वरि मंत ही इस अत्यन्त श्रमसाध्य एवं व्यय-साध्य कार्य को सम्पन्न करा सकते हैं। गुरुदेव श्री का भी इस ओर आकर्षण था। अनेक बार भी पूछा हो चुका है। हमें भी लम्बे-लम्बे विहार और अनेक संस्याओं में कर्मग्रन्थ का आयोजन! स्वयं जीवन में आप १०-१२ घंटा से अधिक समय तक प्रभु की सम्प्रसाध्याय, साहित्य-गर्जन आदि में लीन रहते हैं। १० वर्ष गुरुदेव श्री ने इस कार्य को आगे बढ़ाने का संकल्प किया। विवेचन विस्तृत प्रामाण्य रितः। विवेचन को भाषा-शैली आदि दृष्टियों से सुन्दर एवं संक्षेपपूर्ण बनाने का प्रयत्न। आगमों के उद्धरण संकलन, भूमिका लेखन आदि कार्य का लक्षित प्रणित विद्वान् श्रीयुग श्रीचन्द्र जी मुराना को सौंपा गया। श्रीमदश्री के लक्ष्मी श्री के साहित्य एवं विचारों से अतिनिकट सम्पर्क में है। अनेक बार विवेचन के सम्बन्ध में व्यक्तिगत श्रम करके यह विद्वत्सापूर्ण तथा सर्व-सुख के लिए समर्थ विवेचन तैयार किया है। इस विवेचन में एक



प्रकाशकीय

श्री मरुधरकेसरी साहित्य प्रकाशन समिति के विभिन्न उद्देश्यों में से एक प्रमुख एवं रचनात्मक उद्देश्य है—जैनधर्म एवं दर्शन से सम्बन्धित साहित्य का प्रकाशन करना। संस्था के मार्गदर्शक परमश्रद्धेय श्री मरुधरकेसरीजी महाराज स्वयं एक महान् विद्वान्, आशुकवि तथा जैन आगम तथा दर्शन के मर्मज्ञ हैं और उन्हीं के मार्गदर्शन में संस्था की विभिन्न लोकोपकारी प्रवृत्तियाँ चल रही हैं। गुरुदेवश्री साहित्य के मर्मज्ञ भी हैं, अनुरागी भी हैं। उनकी प्रेरणा से अब तक हमने प्रवचन, जीवनचरित्र, काव्य, आगम तथा गम्भीर विवेचनात्मक ग्रन्थों का प्रकाशन किया है। अब विद्वानों एवं तत्त्वजिज्ञासु पाठकों के सामने हम उनका फिर प्रतीक्षित ग्रन्थ 'कर्मग्रन्थ' विवेचन युक्त प्रस्तुत कर रहे हैं।

कर्मग्रन्थ जैनदर्शन का एक महान् ग्रन्थ है। इसमें जैन तत्त्वज्ञान का सजीव विवेचन समाया हुआ है। पूज्य गुरुदेव श्री के निर्देशन में प्रसिद्ध मेमरन्सप्रादक श्रीमुन् श्रीचन्द्र जी मुराना एवं उनके सहयोगी श्री देवकुमार जी जैन ने मिलकर इसका सुन्दर सम्पादन किया है। तपस्वीवर श्री रजतमुनि जी एवं शिक्षाविनोदी श्री मुकुन्दमुनिजी की प्रेरणा से यह विराट् कार्य समय पर सुन्दर रूप में सम्पन्न हो रहा है। हम सभी विद्वानों, मुनिवरों एवं सहयोगी उदार व्यक्तियों के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करते हैं कि हम इस महान् ग्रन्थ के सभी भागों को पाठकों के समक्ष रख सके। विद्वानों एवं जिज्ञासु पाठकों ने इसका स्वागत किया है। अब यह सड़वाँ एवं अन्तिम भाग भी पाठकों के समक्ष आ रहा है।

इसके साथ ही इस महान् कर्मग्रन्थ की समाप्ति हो गई है। अब सभी पाठकों के समक्ष है। जिज्ञासुजन इनमें लाभ उठावेंगे, इसी विश्वास के साथ—

विनीत, मन्त्री—

श्री मरुधरकेसरी साहित्य प्रकाशन समिति

छह भावों का स्वरूप और भेद-प्रभेदों के वर्णन के साथ संख्यात, असंख्यात और अनन्त इन तीन प्रकार की संख्याओं का वर्णन किया है तथा पंचम कर्मग्रन्थ में उद्धार, अद्धा और क्षेत्र इन तीन प्रकार के पत्योपमों का स्वरूप; द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव—ये चार प्रकार के सूक्ष्म और बादर पुद्गल परावर्तों का स्वरूप एवं उपनमश्रेणि तथा क्षपकश्रेणि का स्वरूप आदि नवीन विषयों का समावेश किया है। इस प्रकार प्राचीन कर्मग्रन्थों की अपेक्षा श्री देवेन्द्रसूरि विरचित नवीन कर्मग्रन्थों की मुख्य विशेषता यह है कि इन कर्मग्रन्थों में प्राचीन कर्मग्रन्थों के प्रत्येक तर्पण विषय का समावेश होने पर भी प्रमाण अत्यल्प है और उसके साथ अनक नवीन विषयों का संग्रह किया गया है।

नवीन कर्मग्रन्थों की टीकाएँ

श्रीमद् देवेन्द्रसूरि ने अपने नवीन कर्मग्रन्थों की स्वोपज्ञ टीकाएँ की थीं, किन्तु उनमें से तीसरे कर्मग्रन्थ की टीका नष्ट हो जाने से बाद में अन्य किसी विद्वान् आचार्य ने अबचूरि नामक टीका की रचना की।

श्रीमद् देवेन्द्रसूरि की टीका-शैली इतनी मनोरंजक है कि मूल गाथा के प्रत्येक पद का वाच्य का विवेचन किया गया है। इतना ही नहीं, बल्कि जिस पद का विस्तारपूर्वक अर्थ समझाने की आवश्यकता हुई, उसका उसी प्रमाण में विवेचन किया है। इनके अतिरिक्त एक विशेषता यह भी देखने में आती है कि व्याख्या की अधिक स्पष्ट करने के लिए आगम, निर्युक्ति, भाष्य, चूणि, क्षेत्र और पुर्याचार्यों के प्रकरण ग्रन्थों में से सम्बन्धित प्रमाणों तथा अन्योन्य प्रमाणों के उद्धरणों का प्रयोग किया है। इस प्रकार नवीन कर्मग्रन्थों की टीकाएँ नवीन विमर्श, सप्रमाण और कर्मवत्त्व के ज्ञान से युक्त है कि इनको देखते ही बाद प्राचीन कर्मग्रन्थों और उनकी टीकाओं आदि को देखने की आवश्यकता नष्ट हो जाती है। टीकाओं की भाषा सरल, सुबोध और सादर है।

श्रीमद् देवेन्द्रसूरि की संक्षेप में जानकारी देने के बाद अब सप्ततिका (सप्ततिका-प्रकरण) का संक्षेप परिचय देते हैं।

सप्ततिका परिचय

सप्ततिका में विचारयोग्य विषय का संक्षेप में संक्षेप प्रथम भाषा में लिखा है। इसका उद्देश्य यह है कि प्रमाणों के सम्बन्धनों, उद्धरण-

प्रत्येक गुणस्थान में बंध प्रकृतियों की संख्या का संकेत किया है। इसठवीं गाथा में तीर्थङ्कर नाम, देवायु और नरकायु इनका सत्त्व तीन-तीन गतियों में ही होता है, किन्तु उनके सिवाय शेष प्रकृतियों की सत्ता सब गतियों में पाई जाती है। इसके बाद की दो गाथाओं में अन्तानुबन्धी और दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियों के उपगमन और क्षण के स्वामी का निर्देशन करके चौसठवीं गाथा में श्लोकादि के क्षण के विशेष नियम की सूचना दी है। इसके बाद पैंसठ से लेकर उनहत्तरवीं गाथा तक चौदहवें अयोगिकेवली गुणस्थान में प्रकृतियों के वेदन एवं उदय मय्यन्धी विवेचन करने के अनन्तर सत्तरवीं गाथा में सिद्धों के गुण का वर्णन किया है।

इस प्रकार ग्रन्थ के वर्ण्य विषय का कथन हो जाने के पश्चात् दो गाथाओं में उपसंहार और लघुता प्रकट करते हुए ग्रन्थ समाप्त किया गया है।
कर्म साहित्य में सप्ततिका का स्थान

अब तक के प्राप्ता प्रमाणों में यह कहा जा सकता है कि श्वेताम्बर और दिगम्बर जैन परम्पराओं में उपलब्ध कर्म-साहित्य का आलेखन अग्रायणीय पूर्व की पंचमी वस्तु के चौथे प्रामूत और जानप्रवाद तथा कर्मप्रवाद पूर्व के आधार में हुआ है। अग्रायणीय पूर्व के आधार से षट्संज्ञागम, कर्मप्रकृति, शतक और सप्ततिका—इन ग्रन्थों का संकलन हुआ और जानप्रवाद पूर्व की दसवीं वस्तु के चौथे प्रामूत के आधार से कपायप्रामूत का संकलन किया गया है।

उक्त ग्रन्थों में से कर्मप्रकृति ग्रन्थ श्वेताम्बर परम्परा में तथा कपायप्रामूत और षट्संज्ञागम दिगम्बर परम्परा में माने जाते हैं तथा कुछ पाठभेद के साथ शतक और सप्ततिका—ये दोनों ग्रन्थ दोनों परम्पराओं में माने जाते हैं।

सप्ततिका या दशोर्ध्व की संख्या के आधार से ग्रन्थ का नाम रखने की परि-
भाषा प्राचीन काल से बची आ रही है। जैसे कि आचार्य त्रिविक्रम कृत 'शतक';
आचार्य विद्वत्केय कृत 'सप्ततिका' प्रकरण; आचार्य हरिभद्रसूत्रि कृत पंचाशक
प्रकरण, विद्वत्केय विरचितिका प्रकरण, शोडशक प्रकरण, अष्टक प्रकरण, आचार्य
विद्वत्केय कृत षट्संज्ञागम आदि अनेकानेक रचनाओं की उदाहरण के
रूप में उद्धृत किया जा सकता है। सप्ततिका का नाम भी इसी आधार से रखा
जा सकता है। यह ग्रन्थ कर्मप्रकृत की कहने का कारण यह है कि वर्तमान में
ये दो ग्रन्थों का एकत्र नाम रखा जाता है।

में मान ली गई है। परन्तु हमने श्री आत्मानन्द जैन ग्रन्थमाला के टीका सहित सप्ततिका को प्रमाण माना है और अन्त की दो गाथाएँ वर्ण्य विषय के वाद आई हैं, अतः उनकी गणना नहीं करने पर ग्रन्थ का नाम सप्ततिका सार्थक सिद्ध होता है।

ग्रन्थकर्ता

नवीन पाँच कर्मग्रन्थ और उनकी स्वोपज्ञ टीका के प्रणेता आचार्य श्रीमद् देवेन्द्रमूरि का विस्तृत परिचय प्रथम कर्मग्रन्थ की प्रस्तावना में दिया जा चुका है। अतः यहाँ सप्ततिका के कर्ता के बारे में ही विचार करते हैं।

सप्ततिका के रचयिता कौन थे, उनके माता-पिता कौन थे, उनके दीक्षा गुरु और विद्या गुरु कौन थे, अपने जीवन से किस भूमि को पवित्र बनाया था आदि प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने के कोई साधन उपलब्ध नहीं हैं। इस समय सप्ततिका और उसकी जो टीकाएँ प्राप्त हैं, वे भी कर्ता के नाम आदि की जानकारी कराने में महायत्ना नहीं देती हैं।

सप्ततिका प्रकरण मूल की प्राचीन ताड़पत्रीय प्रति में चन्द्रपि महत्तर के नाम से गमिन निम्नलिखित गाथा देखने को मिलती है—

गाह्यं सघरीए चंदमहत्तरमयाणुसारीए ।
टीगाद निषमियाणं एगुणा होद नउई उ ॥

लेकिन यह गाथा भी चन्द्रपि महत्तर की सप्ततिका के रचयिता होने की गारंटी नहीं देती है। इस गाथा में इतना ही ज्ञात होता है कि चन्द्रपि महत्तर ने इसका अनुकरण करने वाली टीका के आधार से सप्ततिका की गाथाएँ (७० : ७१) सवासी (८६) हुई हैं। इस गाथा में यही उल्लेख किया गया है कि सप्ततिका में गाथाओं की वृद्धि का कारण क्या है? किन्तु कर्ता के बारे में इसमें नहीं कहा गया है। आचार्य मानवगिरि ने भी अपनी टीका के आदि और अन्त में इनके बारे में कुछ भी संकेत नहीं किया है। इस प्रकार सप्ततिका के कर्ता के बारे में निरन्तर रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता है।

चन्द्रपि महत्तर ग्रन्थों में श्री नमोऽर्च्य की रचना की है और उसमें सप्ततिका के अन्त में गमिन नामक, सप्ततिका, कपाय-प्राभृत, मत्कर्म और सप्ततिका के अन्त में चन्द्रपि महत्तर ने पूर्व हो गए आचार्य कृति का

में भी निर्देशित करते हैं कि अल्पश्रुत वाले अल्पज्ञ मैंने जो कुछ भी बंधविधान का सार कहा है, उसे बंधमोक्ष की विधि में निपुण जन पूरा करके कथन करें।

इसके अतिरिक्त उक्त गाथाओं में णिस्संद, अप्पागम, अप्पसुयमंदमइ, पूरे-ज्जणं, परिणहंतु—ये पद भी ध्यान देने योग्य हैं।

इन दोनों ग्रंथों में यह समानता अनायास ही नहीं है। ऐसी समानता उन्हीं ग्रंथों में देवाने को मिलती है या मिल सकती है, जो एक कर्तृक हों या एक-दूसरे के आधार से निने गये हों। इससे यह फलितार्थ निकलता है कि बहुत सम्भव है कि शतक और सप्ततिका एक ही आचार्य की कृति हों। शतक की चूणि में आचार्य शिवशर्म को उसका कर्ता बतलाया है। ये वे ही आचार्य शिवशर्म हो सकते हैं, जो कर्मप्रकृति के कर्ता माने गए हैं। इस प्रकार विचार करने पर कर्मप्रकृति, शतक और सप्ततिका—इन तीनों ग्रंथों के एक ही कर्ता सिद्ध होते हैं।

नेहिन जब कर्मप्रकृति और सप्ततिका का मिलान करते हैं, तब दोनों की रचना एक आचार्य के द्वारा की गई हो, यह प्रमाणित नहीं होता है। क्योंकि इन दोनों ग्रंथों में विरुद्ध दो मतों का प्रतिपादन किया गया है। जैसे कि सप्ततिका में अनन्तानुबन्धी चतुष्क को उपशम प्रकृति बतलाया है, किन्तु कर्मप्रकृति के उपशमता प्रकरण में अनन्तानुबन्धी चतुष्क की उपशम विधि और अन्तःकरण विधि का निरोध किया है। अतएव सप्ततिका के कर्ता के बारे में निश्चय करना असम्भव-सा प्रतीत होता है।

यह भी सम्भव है कि इनके संकलनकर्ता एक ही आचार्य हों और इनका सम्पूर्ण निम्न दो आधारों से किया गया हो। जो कुछ भी हों, किन्तु उक्त आधारों के समान ही सप्ततिका के कर्ता शिवशर्म आचार्य हों, ऐसा निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है।

इस प्रकार सप्ततिका के कर्ता यौन हैं, आचार्य शिवशर्म हैं या आचार्य कर्मप्रकृति के कर्ता हैं—यह सब कुछ कोई मर्यादना है—निश्चयपूर्वक कहना नहीं सकता। यह प्रमाणित हो जा सकता है कि कोई भी इनके कर्ता हों, अन्य बातें हैं और अभी कारण अनेक कारणों से आचार्यों ने इस पर साक्ष्य, अन्य-

टीका का नाम	परिमाण	कर्ता	रचनाकाल
अन्तर्माष्य गायत्रा	गायत्रा १०	अज्ञात	अज्ञात
माष्य	गायत्रा १६१	अभयदेवसूरि	वि० १२-१३वीं श.
चूणि	पत्र १३२	अज्ञात	अज्ञात
चूणि	श्लोक २३००	चन्द्रपि महत्तर	अनु. ७वीं श.
वृत्ति	श्लोक ३७८०	मलयगिरिसूरि	वि० १२-१३वीं श.
माष्यवृत्ति	श्लोक ४१५०	मेरुतुंग सूरि	वि० सं० १४४६
टिप्पण	श्लोक ५७०	रामदेवगण	वि० १२वीं. श.
अथसूरि		गुणरत्न सूरि	वि० १५वीं. शता.

उनमें से चन्द्रपि महत्तर की चूणि और आचार्य मलयगिरि की वृत्ति प्रकाशित हो चुकी है। हम हिन्दी व्याख्या में आचार्य मलयगिरि सूरि की वृत्ति का उपयोग किया गया है।

टीकाकार आचार्य मलयगिरि

मलयगिरि के रचयिता के समान ही टीकाकार आचार्य मलयगिरि का परिचय भी अत्यन्त सही होता है कि उनकी जन्मभूमि, माता-पिता, गच्छ, दीक्षा-स्थ, शिक्षा-गुरु आदि कीजिये। उनके विद्याभ्यास, ग्रन्थरचना और विहार-भूमि के विवरण वहाँ हैं। उनका विषय-परिवार का या नहीं, आदि के बारे में कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। परन्तु कुमारपाल प्रबन्ध में आगत उल्लेख से उनके आचार्य जेयसूर और महाराज कुमारपाल के समकालीन होने का अनुमान लगाया जा सकता है।

आचार्य मलयगिरि ने दोष ग्रन्थों को टाकाये बिनाकर साहित्यकोश को समर्पित किया है। श्री जेय मलयगिरि ग्रन्थमाला, माधनगर द्वारा प्रकाशित ग्रन्थमाला का मलयगिरि द्वारा रचित टीकाग्रन्थों की संख्या करीब २५ की

2

3

4

5

6

7

8

9

10

11

12

13

14

15

16

17

18

19

20

21

22

23

24

25

26

27

28

29

30

31

32

33

34

35

36

37

38

39

40

41

42

43

44

45

46

47

48

49

50

51

52

53

54

55

56

57

58

59

60

61

62

63

64

65

66

67

68

69

70

71

72

73

74

75

76

77

78

79

80

81

82

83

84

85

86

87

88

89

90

91

92

93

94

95

96

97

98

99

100

101

102

103

104

105

106

107

108

109

110

111

112

113

114

115

116

117

118

119

120

121

122

123

124

125

126

127

128

129

130

131

132

133

134

135

136

137

138

139

140

141

142

143

144

145

146

147

148

149

150

151

152

153

154

155

156

157

158

159

160

161

162

163

164

165

166

167

168

169

170

171

172

173

174

175

176

177

178

179

180

181

182

183

184

185

186

187

188

189

190

191

192

193

194

195

196

197

198

199

200

201

202

203

204

205

206

207

208

209

210

211

212

213

214

215

216

217

218

219

220

221

222

223

224

225

226

227

228

229

230

231

232

233

234

235

236

237

238

239

240

241

242

243

244

245

246

247

248

249

250

251

252

253

254

255

256

257

258

259

260

261

262

263

264

265

266

267

268

269

270

271

272

273

274

275

276

277

278

279

280

281

282

283

284

285

286

287

288

289

290

291

292

293

294

295

296

297

298

299

300

301

302

303

304

305

306

307

308

309

310

311

312

313

314

315

316

317

318

319

320

321

322

323

324

325

326

327

328

329

330

331

भेद हो सकता है। फिर भी ये मान्यता-भेद सम्प्रदाय-भेद पर आधारित नहीं है। इसी प्रकार कहीं-कहीं वर्णन करने की शैली में भेद होने से गाथाओं में अन्तर आ गया है। यह अन्तर उपशमना और क्षपण प्रकरण में देखने को मिलता है।

इस प्रकार यद्यपि इन दोनों सप्ततिकाओं में भेद पड़ जाता है, तो भी ये दोनों एक उद्गम स्थान से निकल कर और बीच-बीच में दो धाराओं से विभक्त होती हुई अन्त में एक रूप हो जाती हैं।

सप्ततिका के बारे में प्रायः आवश्यक बातों पर प्रकाश डाला जा चुका है, अतः अब और अधिक कहने का प्रसंग नहीं है।

इस प्रकार प्राक्तन्यों के रूप में कर्मसिद्धान्त और कर्मग्रन्थों के बारे में अपने विचार व्यक्त किये हैं। विद्वद्वर्ग से सानुरोध आग्रह है कि कर्मसाहित्य का विशेष प्रचार एवं अध्ययन अध्यापन के प्रति विशेष लक्ष्य देने की कृपा करें।

—श्रीचन्द्र सुराना

—देवकुमार जैन



मूल कर्मों के बंधस्थान तथा उनके स्वामी और काल का निर्देश	६
मूलकर्मों के बंधस्थानों आदि का विवरण	८
मूलकर्मों के उदयस्थान तथा उनके स्वामी और काल का निर्देश	१०
उदयस्थान आदि का विवरण	१२
मूल कर्मों के सत्तास्थान तथा उनके स्वामी और काल का निर्देश	१४
सत्तास्थान आदि का विवरण	१७
गाथा ३	१७-२२
मूल कर्मों के बंध, उदय और सत्ता स्थानों के संवेध भंगों का निर्देश	१८
मूल कर्मों के उक्त संवेध भंगों का स्वामी और काल सहित विवरण	२०
गाथा ४	२२-२७
मूल कर्मों के जीवस्थानों में संवेध भंग	२२
आदि के तैरह जीवस्थानों के भंगों का विवरण	२४
संकीर्ण चन्द्रिय जीवस्थान के संवेध भंगों का विवरण तथा उनका स्पष्टीकरण	२५
भौतिक जीवस्थानों के संवेध भंगों का विवरण	२६
गाथा ५	२७-३०
मूल कर्मों के गुणस्थानों में संवेध भंग	२८
मूल प्रकृतियों के गुणस्थानों में बंध उदय सत्ता संवेध भंगों का विवरण	२९
गाथा ६	३०-३४
मूल कर्मों के गुणस्थानों में बंध उदय सत्ता संवेध भंगों का विवरण	३२

गाथा २६	१५८-१७
नामकर्म के उदयस्थान	१६
नामकर्म के उदयस्थानों के स्वामी और उनके मंगों का निर्देश	१६
गाथा २७, २८	१७६-१८
नामकर्म के उदयस्थानों के मंग	१८
उदयस्थानों के मंगों का दर्शक विवरण	१८
गाथा २९	१८४-१८५
नामकर्म के सत्तास्थान	१८४
नामकर्म के सत्तास्थान और गो० कर्मकाण्ड का अभिमत	१८६
गाथा ३०	१८७-१८८
नामकर्म के बंध आदि स्थानों के संवेध कथन की प्रतिज्ञा	१८८
गाथा ३१, ३२	१८८-२०६
ओष में नामकर्म के संवेध का विचार	१९०
नामकर्म के बंधादि स्थान व उनके मंगों का दर्शक विवरण	२०४
गाथा ३३	२०६-२१०
जीवस्थानों और गुणस्थानों में उत्तरप्रकृतियों के बंधादि स्थानों के मंगों का विचार प्रारम्भ करने की प्रतिज्ञा	२१०
गाथा ३४	२१०-२१३
जीवस्थान में ज्ञानावरण और अन्तरायकर्म के बंधादि स्थानों के संवेध मंगों का विचार	२११
गाथा ३५	२१३-२१४
जीवस्थान में ज्ञानावरण कर्म के बंधादि स्थानों के संवेध मंगों का विचार	२१३
जीवस्थानों के दोषीय, आवृ और मोक्षकर्म के बंधादि स्थानों	२१३

गाथा ४२

२६६-२७१

गुणस्थानों में मोहनीयकर्म के बंधस्थानों का विचार

२७

गाथा ४३, ४४, ४५

२७२-२७

गुणस्थानों में मोहनीयकर्म के उदयस्थानों का विचार

२७

गाथा ४६

२७६-२८

गुणस्थानों की अपेक्षा उदयस्थानों के संग

२७

गुणस्थानों की अपेक्षा उदयविकल्पों और पदवृन्दों का दर्शक
विवरण

२८

गाथा ४७

२८३-३१

योग, उपयोग और लेश्याओं में संवेध भंगों की सूचना

२९

योग की अपेक्षा गुणस्थानों में उदयविकल्पों का विचार

२९

योग की अपेक्षा उदयविकल्पों का दर्शक विवरण

२९

योग की अपेक्षा गुणस्थानों में पदवृन्दों का विचार

२९

योग की अपेक्षा पदवृन्दों का दर्शक विवरण

२९

उपयोगों की अपेक्षा गुणस्थानों में उदयस्थानों का विचार

२९

उपयोगों की अपेक्षा उदयविकल्पों का दर्शक विवरण

२९

उपयोगों की अपेक्षा पदवृन्दों का विचार

२९

उपयोगों की अपेक्षा पदवृन्दों का दर्शक विवरण

२९

लेश्याओं की अपेक्षा गुणस्थानों में उदयस्थानों का विचार

२९

लेश्याओं की अपेक्षा उदयविकल्पों का दर्शक विवरण

२९

लेश्याओं की अपेक्षा पदवृन्दों का विचार

२९

लेश्याओं की अपेक्षा पदवृन्दों का दर्शक विवरण

२९

गाथा ४८

३०३-

गुणस्थानों में मोहनीयकर्म के मत्तास्थान

गुणस्थानों में मोहनीयकर्म के मत्तास्थानों के संवेध भंगों का

विवरण

$$v^{\alpha} \partial^{\alpha} \phi$$

$$2\pi \int_0^1 \phi(x) dx$$

अनिवृत्तिवादर, सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानों में नामकर्म के बंधादि स्थानों व संवेध भंगों का विचार	३४३
उपशान्तमोह, क्षीणमोह गुणस्थानों में नामकर्म के बंधादि स्थानों व संवेध भंगों का विचार	३४५
सयोगिकेवली गुणस्थान में नामकर्म के उदय व सत्ता स्थानों का विचार व उनके संवेध भंगों का दर्शक विवरण	३४६
अयोगिकेवली गुणस्थान में नामकर्म के उदय व सत्ता स्थानों के संवेध का विचार व उनका दर्शक विवरण	३४७

गाथा ५१

३४८-३६१

गतिमार्गणा में नाम कर्म के बंधादि स्थानों का विचार	३४८
नरक आदि गतियों में बन्धस्थान	३४९
नरकगति में संवेध भंगों का विचार	३५०
नरकगति में संवेध भंगों का दर्शक विवरण	३५१
निर्योचगति में संवेध भंगों का विचार	३५२
तिर्य्यचगति में संवेध भंगों का दर्शक विवरण	३५३
मनुष्यगति में संवेध भंगों का विचार	३५६
मनुष्यगति में संवेध भंगों का दर्शक विवरण	३५७
देवगति में संवेध भंगों का विचार	३६०
देवगति में संवेध भंगों का दर्शक विवरण	३६०

गाथा ५२

३६१-३७७

अनिवृत्तिवादर, सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानों में नामकर्म के बंधादि स्थानों का विचार	३६१
उपशान्तमोह, क्षीणमोह गुणस्थानों में नामकर्म के बंधादि स्थानों का विचार	३६२
सयोगिकेवली गुणस्थान में नामकर्म के उदय व सत्ता स्थानों का विचार व उनके संवेध भंगों का दर्शक विवरण	३६३
अयोगिकेवली गुणस्थान में नामकर्म के उदय व सत्ता स्थानों के संवेध का विचार व उनका दर्शक विवरण	३६४
गतिमार्गणा में नाम कर्म के बंधादि स्थानों का विचार	३६५
नरक आदि गतियों में बन्धस्थान	३६६
नरकगति में संवेध भंगों का विचार	३६७
नरकगति में संवेध भंगों का दर्शक विवरण	३६८
निर्योचगति में संवेध भंगों का विचार	३६९
तिर्य्यचगति में संवेध भंगों का दर्शक विवरण	३७०
मनुष्यगति में संवेध भंगों का विचार	३७१
मनुष्यगति में संवेध भंगों का दर्शक विवरण	३७२
देवगति में संवेध भंगों का विचार	३७३
देवगति में संवेध भंगों का दर्शक विवरण	३७४

गाथा ५६

३८८-३९२

अनिवृत्तिवादर से लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक की
बंधयोग्य प्रकृतियाँ और उनका कारण ३८६
गुणस्थानों में बंध प्रकृतियों का दर्शक विवरण ३९१

गाथा ६०

३९२-३९३

मार्गणाओं में बन्धस्वामित्व को जानने की सूचना ३९२

गाथा ६१

३९३-३९४

गतियों में प्रकृतियों की सत्ता का विचार ३९३

गाथा ६२

३९४-४२०

उपशम श्रेणी के विचार का प्रारम्भ ३९४

अनन्तानुबंधी चतुष्क की उपशम विधि ३९६

अनन्तानुबंधी चतुष्क की विसंयोजना विधि ४०४

दर्शनमोहनीय की उपशमना विधि ४०८

चारित्र्यमोहनीय की उपशमना विधि ४०९

उपशमश्रेणि से च्युत होकर जीव किस-किस गुणस्थान को ४१६

प्राप्त होता है, इसका विचार ४१६

एक मन में कितनी बार उपशमश्रेणि पर आरोहण हो सकता है ४२०

गाथा ६३

४२०-४३१

क्षयश्रेणि के विचार का प्रारंभ ४२४

क्षयश्रेणि का आरम्भक कौन होता है ४२७

क्षयश्रेणि में क्षय होने वाली प्रकृतियों का निर्देश व तत्सम्बन्धी ४२९

विवरण ४२९

पुनर्बोध के आशय से क्षयश्रेणि का वर्णन ४२८

गाथा ६४

४३३-४३८

पुनर्बोध चतुष्क के क्षय के समय का वर्णन ४३३

पुनर्बोध की व्याख्या और उसके भेद ४३८

.

21

22

23

24

25

26

27

28

29

30

परिशिष्ट

- परिशिष्ट १—षष्ठ कर्मग्रन्थ की मूल गाथायें १
- परिशिष्ट २—छह कर्मग्रन्थों में आगत पारिभाषिक शब्दों का कोष ६
- परिशिष्ट ३—कर्मग्रन्थों की गाथाओं एवं व्याख्या में आगत
पिण्डप्रकृति-सूचक शब्दों का कोष ६८
- परिशिष्ट ४—सप्ततिका प्रकरण की गाथाओं का अकारादि
अनुक्रम ७७
- परिशिष्ट ५—कर्मग्रन्थों की व्याख्या में प्रयुक्त सहायक ग्रन्थों
की सूची । ८१

तालिकाएँ

- मार्गगाओं में मोहनीयकर्म के बंध, उदय, सत्ता स्थानों व उनके
संवेध मंगों का दर्शक विवरण ३७५
- मार्गगाओं में नाम कर्म के बंध, उदय, सत्ता स्थानों और उनके
संवेध मंगों का दर्शक विवरण ३७५

10

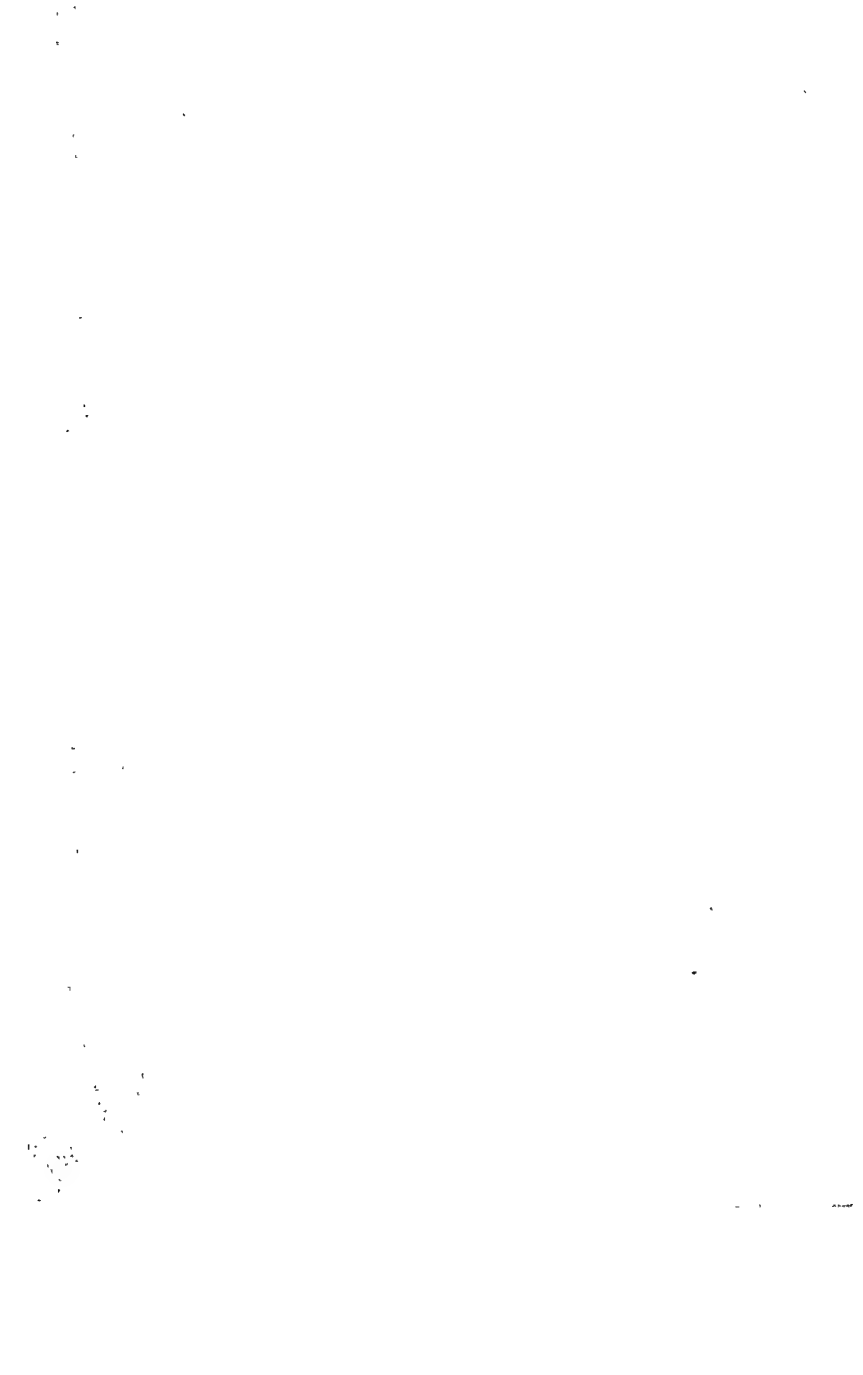
11

12

13

14

15





अवाधित होती है। विद्वानों को निश्चिन्त होकर ऐसे ग्रन्थों का अध्ययन, मनन और चिन्तन करना चाहिये। इसीलिये आचार्य मलयगिरि ने गाथागत 'सिद्धपएहि' सिद्धपद के निम्नलिखित दो किये हैं—

जिन ग्रन्थों के सब पद सर्वज्ञोक्त अर्थ का अनुसरण करने व होने से सुप्रतिष्ठित हैं, जिनमें निहित अर्थगाम्भीर्य को किसी भी प्रकार से विकृत नहीं किया जा सकता है, अथवा शंका पैदा नहीं होती है, ग्रन्थ सिद्धपद कहे जाते हैं।^१ अथवा जिनागम में जीवस्थान, गुणस्थान रूप पद प्रसिद्ध हैं, अतएव जीवस्थानों, गुणस्थानों का बतलाने के लिये गाथा में 'सिद्धपद' दिया गया है।^२

उक्त दोनों अर्थों में से प्रथम अर्थ के अनुसार 'सिद्धपद' शब्द की प्रकृति आदि प्राभृतों का वाचक है, क्योंकि इस सप्ततिका नाम प्रकरण का विषय उन ग्रन्थों के आधार से ग्रन्थकार ने संक्षेप रूप निबद्ध किया है। इस बात को स्पष्ट करने के लिये गाथा के चतुर्थ चरण में संकेत दिया गया है—'नीसंदं दिट्ठिवायस्स'—दृष्टिवाद महाण्व की एक वृंद के समान है। दृष्टिवादरूपी महाण्व की वृंद जैसा बतलाने का कारण यह है कि दृष्टिवाद नामक चारहवें भेद के परिकर्म, मूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका यह पाँच भेद हैं। उनमें से पूर्वगत के उत्पादपूर्व आदि चौदह भेद हैं। उनमें दूसरे पूर्वगत नाम अग्रायणीय है और उसके मुख्य चौदह अधिकार हैं, जिन्हें क

१ सिद्ध—प्रतिष्ठितं ज्ञानमिदमुपगम्यमित्येकोऽर्थः। ततः सिद्धानि पदानि तेषां ग्रन्थेषु ते सिद्धपदाः।

२ महाण्वे सिद्धादि—प्रसिद्धानि यानि जीवस्थान-गुणस्थानरूपानि तेषां ग्रन्थेषु सिद्धपदानि। अन्यः गान्धाश्रित्य तेषु विषय इत्यर्थः।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १३

निर्देश करते हुए कहा है—‘बंधोदयसंतपयडिठाणाणं वोच्छे’—बंध उदय और सत्ता प्रकृति स्थानों का कथन किया जा रहा है। जिनके लक्षण इस प्रकार हैं—लोहपिंड के प्रत्येक कण में, जैसे अग्नि प्रविष्ट हो जाती है, वैसे ही कर्म-परमाणुओं का आत्मप्रदेशों के साथ-परमाणु जो एकक्षेत्रावगाही सम्बन्ध होता है, उसे बंध कहते हैं।^१ विपाक अवस्था को प्राप्त हुए कर्म-परमाणुओं के भोग को उदय कहते हैं। बंध-समय से या संक्रमण-समय से लेकर जब तक उन कर्म-परमाणु का अन्य प्रकृतिरूप से संक्रमण नहीं होता या जब तक उनकी निर्वाण नहीं होती, तब तक उनका आत्मा के साथ संबद्ध रहने को संध कहते हैं।^३

स्थान शब्द समुदायवाची है, अतः प्रकृतिस्थान पद से दो, ती आदि प्रकृतियों के समुदाय को ग्रहण करना चाहिये।^५ ये प्रकृतिस्थान बंध, उदय और सत्त्व के भेद से तीन प्रकार के हैं। जिनका ग्रन्थ में विवेचन किया जा रहा है।

गाथा में आगत ‘मुण’ क्रियापद द्वारा ग्रन्थकार ने यह ध्वनि किया है कि आचार्य शिष्यों को सम्बोधित एवं सावधान करके का व्याख्यान करें। क्योंकि बिना सावधान किये ही अध्या

१ तत्र बंधो नाम—कर्मपरमाणूनामात्मप्रदेशः सह बहुभयःपिण्डवदभोगः नुमयः । —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १

२ कर्मपरमाणूनामेव विपाकप्राप्तानामनुमवनमुदयः । —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १

३ बन्धवमयात् संक्रमेणारमनामममयाद्वा आरम्य यावत् ते कर्मपरमाणूनां संक्रमणं यावत् वा न क्षयमुपगच्छन्ति तावत् तेषां स्वस्थवत्त्वमवस्थाः सा मया । —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १

४ प्रकृतिः स्वभावः—समुदायाः प्रकृतिस्थानानि द्विष्ट्यादिप्रकृतिमयानि, स्वभावप्रदेशस्य समुदायवाची । —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १

बनते हैं, किन्तु वाचाशक्ति की मर्यादा होने के कारण जिनका पूर्ण रूपेण कथन किया जाना सम्भव नहीं होने से क्रमशः मूल और उत्तम प्रकृतियों में सामान्यतया उन विकल्पों का कथन करते हैं।

इस प्रकार इस गाथा के वाच्यार्थ पर विचार करने पर दो बातों की सूचना मिलती है। प्रथम यह कि इस प्रकरण में मुख्यतया पहले मूल प्रकृतियों और इसके बाद उत्तर प्रकृतियों के बन्ध-प्रकृतिस्थानों उदय-प्रकृतिस्थानों और सत्व-प्रकृतिस्थानों का तथा उनके परस्पर संबंध और उनसे उत्पन्न हुए भंगों का विचार किया गया है। दूसरी बात यह है कि उन भंग-विकल्पों को यथास्थान जीवस्थानों और गुणस्थानों में घटित करके बतलाया गया है।

इस विषय-विभाग को ध्यान में रखकर टीका में सबसे पहला आठ मूल प्रकृतियों के वंश-प्रकृतिस्थानों, उदय-प्रकृतिस्थानों और सत्त्व-प्रकृतिस्थानों का कथन किया गया है। क्योंकि इनका कथन किये बिना आगे की गाथा में बतलाये गये इन स्थानों के संवेधन सरलता से ज्ञान नहीं हो सकता है। साथ ही प्रसंगानुसार इन स्थानों के स्वामी और काल का निर्देश किया गया है, जिनका स्पष्टीकरण नीचे किया जा रहा है।

ब्रह्मसूत्र, स्वामी और उनका काल

कर्मों की मूल प्रकृतियों के निम्नलिखित आठ भेद हैं—१. ज्ञान, २. वशनाश्रयण, ३. वेदनीय, ४. मोहनीय, ५. आयु, ६. नाश, ७. शीत और ८. अंतराण। इनके स्वरूप, लक्षण पहले बतलाये जा चुके हैं। मूल कर्म प्रकृतियों के आठ प्रकृतिक, सात प्रकृतिक, ६

३३५: पञ्चदशसंख्यारामसंविद्येन मीनतम् ।

—कर्मप्रकृति सप्तोदयः, १० ।

हैं, आठ प्रकृतिक बंधस्थान के स्वामी माने जाते हैं। आयु और मोहनीय कर्म के बिना छह कर्मों का बन्ध केवल दसवें गुणस्थान—सूक्ष्मसंपराय में होता है। अतः सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान वाले जीव छह प्रकृतिक बंधस्थान के स्वामी हैं। वेदनीय कर्म का बंध ग्यारहवें बारहवें और तेरहवें गुणस्थान में होता है, अतः उक्त तीन गुणस्थान वाले जीव एक प्रकृतिक बंधस्थान के स्वामी हैं।^१

इन बंधस्थानों का काल इस प्रकार है कि आठ प्रकृतिक बंधस्थान आयुर्कर्म के बंध के समय होता है और आयुर्कर्म का जघन्य व उत्कृष्ट बंधकाल अन्तर्मुहूर्त है। अतः आठ प्रकृतिक बंधस्थान का जघन्य व उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण जानना चाहिये।

सात प्रकृतिक बंधस्थान का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। क्योंकि जो अप्रमत्तसंयत जीव आठ मूल प्रकृतियों का बन्ध करके सात प्रकृतियों के बंध का प्रारम्भ करता है, वह यदि उपशम श्रेणि पर आरोहण करके अन्तर्मुहूर्त काल में सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान को प्राप्त हो जाता है तो उसके सात प्रकृतिक बंधस्थान का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त होता है। इसका कारण यह है कि सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान में छह प्रकृतिक स्थान का बंध होने लगता है तथा सात प्रकृतिक बंधस्थान

१. समु मयिद्वन्द्वविहं कम्मं बंधंति तिमृ य मत्तविहं ।

संश्रितमेन्द्राणे तिमृ एकमबंधगो एवतो ॥—गो० कर्मकांड ४४१

—विषय गुणस्थान के बिना अप्रमत्त गुणस्थान पर्यन्त छह गुणस्थानों में तीन आयु के बिना सात और आयु महित आठ प्रकार के कर्मों को बांधते हैं। विषय, अनुसंधान और अनिवृत्तिकरण इन तीन गुणस्थानों में आयु के बिना सात प्रकार के ही कर्म बांधते हैं। सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान में आयु के बिना छह प्रकार के कर्मों का बन्ध होता है। उपशमश्रेणी पर तीन गुणस्थानों में एक वेदनीय कर्म का ही बन्ध होता है और अप्रमत्तसंयत जीव अन्तर्मुहूर्त में अष्टौ उभयै तिमृ प्रकृति का बन्ध नहीं होता है।

काल व्यतीत होने पर संयम धारण करके एक अन्तर्मुहूर्त काल के भीतर क्षीणमोह होकर सयोगिकेवली हो जाता है, उसके एक प्रकृतिक बंधस्थान का उत्कृष्ट काल आठ वर्ष, सात माह और अन्तर्मुहूर्त कम एक पूर्व कोटि वर्ष प्रमाण प्राप्त होता है। बन्धस्थानों के भेद, स्वामी और काल प्रदर्शक विवरण इस प्रकार है—

बंधस्थान	मूल प्रकृति	स्वामी	काल	
			जघन्य	उत्कृष्ट
आठ प्रकृतिक	सय	मिश्र गुण. के विना अप्रमत्त गुणस्थान तक	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त
सात प्रकृतिक	आयु के विना	आदि के नौ गुणस्थान	अन्तर्मुहूर्त	एक अन्तर्मुहूर्त और छह माह कम तथा पूर्व कोटि का त्रिमास अधिक तेतीस सागर
छह प्रकृतिक	मोह व आयु के विना	सूक्ष्म-संपराय	एक समय	अन्तर्मुहूर्त
पाँच प्रकृतिक	देशनोद	११, १२, १३वां गुणस्थान	एक समय	देशोन पूर्वकोटि

बंधस्थान, स्वामी और काल

बंध प्रकृतिस्थानों का कथन करने के पश्चात् अब उदय की ओर से प्रकृतिस्थानों का निरूपण करते हैं कि आठ प्रकृतिक, सात प्रकृतिक और छह प्रकृतिक, इस प्रकार मूल प्रकृतियों की अपेक्षा तीनों उदयस्थान होते हैं।

उक्त तीन प्रकृतिस्थानानि, तथा—अष्टौ सप्ता वनसः ।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १४

स्वामी ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थान के जीव हैं। चार अघाती कर्मों का उदय तेरहवें सयोगिकेवली और चौदहवें अयोगिकेवली गुणस्थान तक होता है। अतएव चार प्रकृतिक उदयस्थान के स्वामी सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जीव हैं।^१

इन तीन उदयस्थानों में से आठ प्रकृतिक उदयस्थान के काल के तीन विकल्प हैं—१. अनादि-अनन्त, २. अनादि-सान्त और ३. सादि-सान्त। इनमें से अभव्यों के अनादि-अनन्त, भव्यों के अनादि-सान्त और उपशान्तमोह गुणस्थान से गिरे हुए जीवों की अपेक्षा सादि-सान्त काल होता है।^२

सादि-सान्त विकल्प की अपेक्षा आठ प्रकृतिक उदयस्थान का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल कुछ कम अपार्धपुद्गल परावर्त प्रमाण है। जो जीव उपशमश्रेणि से गिरकर पुनः अन्तर्मुहूर्त काल के भीतर उपशमश्रेणि पर चढ़कर उपशममोही हो जाता है उस जीव के आठ प्रकृतिक उदयस्थान का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त होता है और जो जीव अपार्ध पुद्गल परावर्त काल के प्रारम्भ में उपशान्तमोही और अन्त में क्षीणमोही हुआ है, उसके आठ प्रकृतिक

१. अद्भुतो गृह्णीति य मोहेन विना ह संतस्त्रिणेषु।

पाणिप्रमाण शब्दात्समुदाय केवलदुगे नियमा ॥

—गो० कर्मकांड, भा० ४४४

—गुणस्थान तक गुणस्थान तक आठ प्रकृतियों का उदय है। उपशमश्रेणि और क्षीणश्रेणि इन दो गुणस्थानों में मोहनीय के विना जीव का उदय है तथा सयोग और अयोग इन दोनों में चार अघातियों का उदय निरम में जानना चाहिये।

२. इन मोहनीय गुणस्थानों, यानि सयोगोपशमव्यापिकृत्य अनाद्यप्यव्यापिकृत्य सादि-सान्तकाल, उपशान्तमोहगुणस्थानकाल प्रतिगतिवत् सादि-सान्तकालः। —गणनिका प्रकरण टीका, पृ० १४२

जन्म लेकर आठ वर्ष प्रमाण काल के व्यतीत होने पर संयम प्राप्त करके एक अन्तर्मुहूर्त काल के भीतर क्षीणमोह, संयोगिकेवली हो जाते हैं तो वैसे ही आठ वर्ष, सात माह कम एक पूर्व कोटि वर्ष प्रमाण समझना चाहिये। यहाँ इतनी विशेषता है कि इसमें क्षीणमोह गुणस्थान का काल अन्तर्मुहूर्त घटा कर उतना काल लेना चाहिये।

उदयस्थानों के स्वामी, काल आदि का विवरण इस प्रकार है—

उदयस्थान	मूल प्रकृति	स्वामी	काल	
			जघन्य	उत्कृष्ट
आठ प्रकृति	समी	आदि के दस गुणस्थान	अन्तर्मुहूर्त	कुछ कम अपाय पुद्गल परावर्त
सात प्रकृति	मोह के बिना	११वाँ, १२वाँ गुणस्थान	एक समय	अन्तर्मुहूर्त
चार प्रकृति	चार अघाती	१३वाँ, १४वाँ गुणस्थान	अन्तर्मुहूर्त	देशों पूर्वकोटि

सत्तास्थान, स्वामी और काल

ग्रन्थ और उदयस्थानों को बतलाने के बाद अब सत्तास्थानों को बतलाते हैं। सत्ता प्रकृतिस्थान तीन हैं—आठ प्रकृतिक, सात प्रकृतिक और चार प्रकृतिक। आठ प्रकृतिक सत्तास्थान में ज्ञानावरण और अन्तरायपर्यन्त मूल प्रकृतियों का, सात प्रकृतिक सत्तास्थान मोहनीय के निवारण से सात प्रकृतियों और चार प्रकृतिक सत्तास्थान में चार अघाती कर्मों का ग्रहण किया जाता है। इस विहित नाशोत्पत्ति कहते हैं कि मोहनीय कर्म के सद्भाव में आठों वर्षों, ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय की विद्यमानता में अ

—सत्तास्थानों की प्रकृतिस्थानानि । तथया—अष्टो, सप्त चतस्रः ।

—सत्तास्थान प्रकरण टीका, पृ० १

इन तीन सत्तास्थानों में से आठ प्रकृतिक सत्तास्थान का काल अभव्य की अपेक्षा अनादि-अनन्त है, क्योंकि अभव्य के सिर्फ एक मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है और मिथ्यात्व गुणस्थान में किसी भी मूल प्रकृति का क्षय नहीं होता है। भव्य जीवों की अपेक्षा आठ प्रकृतिक सत्तास्थान का काल अनादि-सान्त है, क्योंकि क्षपक सूक्ष्म संपराय गुणस्थान में ही मोहनीय कर्म का समूल उच्छेद कर देता है और उसके बाद क्षीणमोह गुणस्थान में सात प्रकृतिक सत्तास्थान की प्राप्ति होती है और क्षीणमोह गुणस्थान से प्रतिपत्न नहीं होता है जिससे यह सिद्ध हुआ कि भव्य जीवों की अपेक्षा आठ प्रकृतिक सत्तास्थान अनादि-सान्त है।^१

सात प्रकृतिक सत्तास्थान वारहवें क्षीणमोह गुणस्थान में होता है और क्षीणमोह गुणस्थान का जघन्य व उत्कृष्ट काल अन्तर्मुह प्रमाण है। अतः सात प्रकृतिक सत्तास्थान का जघन्य व उत्कृष्ट काल भी अन्तर्मुह प्रमाण ही है।^२

चार प्रकृतिक सत्तास्थान सयोगिकेवली और अयोगिकेवली गुणस्थानों में पाया जाता है और इन गुणस्थानों का जघन्यकाल अन्तर्मुह और उत्कृष्टकाल कुछ कम एक पूर्व कोटि वर्ष प्रमाण है। अतः चार प्रकृतिक सत्तास्थान का जघन्यकाल अन्तर्मुह और उत्कृष्टकाल कुछ कम एक पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण समझना चाहिये

१ यत्र सर्वप्रकृतिकसत्तास्थानां, एतासां चाष्टानां सत्ता अभव्यागधितः अनादि-अनन्तः, सन्तर्मुहप्रमाणः अनादि-अनन्तः।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० ११

२ अष्टकोटि क्षीण सत्तास्थानां सत्ता, सा च जघन्योत्कृष्टकालान्तर्मुहप्रमाणः, एतद्विषयः, क्षीणकोटिगुणस्थानादं सत्तर्मुहप्रमाणमिति।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० ११

शब्दायं—अट्ठविहसत्तछब्धबंधोसु—अष्टविध, सप्तविध, पड्-
विध बंध के समय, अट्ठेव—आठों कर्म की, उदयसंताइं—उदय
और सत्ता, एगविहे—एकविध बंध के समय, तिविगणो—तीन
विकल्प, एगविगणो—एक विकल्प, अबंधम्मि—अबन्ध दशा में, बंध
न होने पर ।

गायायं—आठ, सात और छह प्रकार के कर्मों का बंध
होने के समय उदय और सत्ता आठों कर्म की होती है । एक-
विध (एक का) बंध होते समय उदय व सत्ता की अपेक्षा तीन
विकल्प होते हैं तथा बंध न होने पर उदय और सत्ता की
अपेक्षा एक ही विकल्प होता है ।

मिसेयायं—इस गाया में मूल प्रकृतियों के बंध, उदय और सत्ता
संवेध भंगों का कथन किया गया है ।

आठ प्रकृतिक, सात प्रकृतिक और छह प्रकृतिक बंध होने के सम
आठों कर्मों का उदय और आठों कर्मों की सत्ता होती है—‘अट्ठ-
उदयसंताइं’ । अर्थात् सातवें अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक के ज
गिथ गुणस्थान को छोड़कर आयुबंध के समय आठों कर्मों का
कर सकते हैं अतः उनके आठ प्रकृतिक बंध, आठ प्रकृतिक उदय व
आठ प्रकृतिक सत्ता होती है । अनिवृत्तिवादर संपराय गुणस्थान
के जीव आयुर्कर्म के बिना योग सात कर्मों का बंध करते हैं वि
इसके उदय और सत्ता आठों कर्मों की हो सकती है और सूक्ष्मसंप
संग आठ व मोक्षणीय कर्म के बिना छह कर्मों का बंध कर
किरिन इनकी भी आठ कर्मों का उदय और सत्ता होती है ।

इस प्रकार से कर्मों की बंध प्रकृतियों में भिन्नता होने पर

एक प्रसंग मानने का कारण यह है कि उपर्युक्त
प्रमाण हैं और सम्यक्ता का कारण मोक्षणीय कर्म का
व मोक्षणीय कर्म का उदय है तब उनकी सत्ता अव

तीनों अनिवृत्तिवादेर गुणस्थान में आयुकर्म का बंध नहीं होता अतः वहाँ तो यह दूसरा भंग ही होता है किन्तु मिथ्यादृष्टि आदि अन्य गुणस्थानवर्ती जीवों के भी सर्वदा आयुकर्म का बंध नहीं होता, अतः वहाँ भी जब आयुकर्म का बंध नहीं होता है तब दूसरा भंग व्रज जाता है। इस भंग का काल जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट द्वा माह और अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वकोटि का त्रिभाग अधिक तेरी सागर है।

तीसरा भंग सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानवर्ती जीव को ही होता है क्योंकि इनके आयु और मोहनीय कर्म के बिना शेष छह कर्मों का बंध होता है। इसका काल जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।

यह तीनों भंग बंधस्थानों की प्रधानता से बनते हैं। अतः इन जघन्य और उत्कृष्ट काल पूर्व में बताये बंधस्थानों के काल अनुरूप बतलाया है।

एक प्रकार के अर्थात् एक वेदनीय कर्म का बंध होने पर त्रि विवला होते हैं—‘एगविहे त्रिविगणो’। जिनका स्पष्टीकरण प्रकार है—

वेदनीय कर्म का बंध ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें—उपरा मोह, क्षीणमोह और मयोजिकेवली, इन तीन गुणस्थानों में होता किन्तु उपरान्तमोह गुणस्थान में सात का उदय और आठ की स क्षीणमोह गुणस्थान में सात का उदय और सात की सत्ता, सय वेदनीय गुणस्थान में एक का बंध और चार का उदय, चार की सत्ता होती है। अतः एक—वेदनीय कर्म का बंध होने की स्थिति और सत्ता को अनेक तीनों भंग इस प्रकार प्राप्त होते हैं—

१. एक—एक बंध, ग्यारहवें उदय और आठ प्र

1. The first part of the paper is devoted to the study of the asymptotic behavior of the solutions of the system (1) as $\epsilon \rightarrow 0$. It is shown that the solutions of the system (1) converge to the solutions of the system (2) in the sense of the weak convergence in the space $L^2(\Omega; \mathbb{R}^n)$.

पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय के पाँच भंग इस प्रकार होते हैं—

वन्ध	८	७	६	१	१
उदय	८	८	८	७	७
सत्ता	८	८	८	८	७

इन पाँच भंगों में से पहला भंग अनिवृत्ति गुणस्थान तक दूसरा भंग अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक, तीसरा भंग उपशमश्रेणी या क्षपकश्रेणि में विद्यमान सूक्ष्मसंपराय संयत, के, चौथा भंग उपशान्तमोह गुणस्थान में और पाँचवा भंग क्षीणमोह गुणस्थान होता है।

यद्यपि केवली जिन भी पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय हैं और उनके पाँच भंग गानना चाहिये। लेकिन उनके भंग अलग से बताने के कारण यह है कि केवली जीवों के क्षायोपशमिक ज्ञान नहीं रहते मतः वे संज्ञी नहीं होते हैं। इसीलिये उनके संज्ञित्व का निषेध करने निम्न पाया में उनके भंगों का पृथक् से निर्देश किया है—'दो भंग द्विगो'। उनके एक प्रकृतिक बंध, चार प्रकृतिक उदय और चार प्रकृतिक सत्ता—यह एक भंग तथा चार प्रकृतिक उदय व चार प्रकृतिक सत्ता, लेकिन बंध एक भी प्रकृति का नहीं, यह दूसरा भंग होता है। पहला भंग सयोगिकेवली के पाया जाता है, वहाँ सिर्फ केवलीय कर्म का ही बंध होता है, किन्तु उदय और सत्ता चार अघाति कर्मों की होती है। दूसरा भंग अयोगिकेवली के होता है। वहाँ इसके एक भी कर्म का बंध न होकर सिर्फ चार अघाति कर्मों का उदय व सत्ता पाई जाती है।

मोह और योग के निमित्त से ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य रूप आत्मा के गुणों की जो तरतमरूप अवस्थाविशेष होती है, उसे गुणस्थान कहते हैं। अर्थात् गुण+स्थान से निष्पन्न शब्द गुणस्थान है और गुण का मतलब है आत्मा के ज्ञान, दर्शन आदि गुण और स्थान यानि उन गुणों की मोह के उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशम के कारण होने वाली तरतम रूप अवस्थायें विशेष।

गुणस्थान के चौदह भेद होते हैं। जिनके नाम इस प्रकार हैं—
१. मिथ्यात्व, २. सासादन सम्यग्दृष्टि, ३. सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिथ्य),
४. अविरत सम्यग्दृष्टि, ५. देशविरत, ६. प्रमत्तविरत, ७. अप्रमत्त-
विरत, ८. अपूर्वकरण, ९. अनिवृत्तिवादर, १०. सूक्ष्मसंपराय, ११. उप-
शान्तमोह, १२. क्षीणमोह, १३. सयोगिकेवली, १४. अयोगिकेवली।
इन चौदह भेदों में आदि के बारह भेद मोहनीय कर्म के उदय, उपशम
आदि के निमित्त से होते हैं तथा तेरहवाँ सयोगिकेवली और चौदहवाँ
अयोगिकेवली यह दो अन्तिम गुणस्थान योग के निमित्त से होते
हैं। सयोगिकेवली गुणस्थान योग सद्भाव की अपेक्षा से और अयोगि-
केवली गुणस्थान योग के अभाव की अपेक्षा से होता है।

उक्त चौदह गुणस्थानों में से आठ गुणस्थानों में बंध, उदय और
गता रूप कर्मों का अलग-अलग एक-एक भंग होता है—‘अदृष्टगुण-
विग्रहो’। जिसका स्पष्टीकरण निम्न प्रकार है—

सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिथ्य), अपूर्वकरण, अनिवृत्तिवादर, सूक्ष्मसं-
पराय, उपशान्तमोह, क्षीणमोह, सयोगिकेवली, अयोगिकेवली, इन आठ
गुणस्थानों में बंध, उदय और गता प्रकृति स्थानों का एक-एक भंग
होता है। इनमें एक-एक भंग होने का कारण यह है कि सम्यग्मिथ्या-
दृष्टि, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिवादर इन तीन गुणस्थानों में आयुष्म-
न् के दोष अन्तर्गत नहीं होने के कारण सात प्रकृतिक बंध, उदय
और गता प्रकृतिक गता यह एक ही भंग होता है।

1. $\frac{1}{2}$
 2. $\frac{1}{3}$
 3. $\frac{1}{4}$
 4. $\frac{1}{5}$
 5. $\frac{1}{6}$
 6. $\frac{1}{7}$
 7. $\frac{1}{8}$
 8. $\frac{1}{9}$
 9. $\frac{1}{10}$
 10. $\frac{1}{11}$
 11. $\frac{1}{12}$
 12. $\frac{1}{13}$
 13. $\frac{1}{14}$
 14. $\frac{1}{15}$
 15. $\frac{1}{16}$
 16. $\frac{1}{17}$
 17. $\frac{1}{18}$
 18. $\frac{1}{19}$
 19. $\frac{1}{20}$
 20. $\frac{1}{21}$
 21. $\frac{1}{22}$
 22. $\frac{1}{23}$
 23. $\frac{1}{24}$
 24. $\frac{1}{25}$
 25. $\frac{1}{26}$
 26. $\frac{1}{27}$
 27. $\frac{1}{28}$
 28. $\frac{1}{29}$
 29. $\frac{1}{30}$
 30. $\frac{1}{31}$
 31. $\frac{1}{32}$
 32. $\frac{1}{33}$
 33. $\frac{1}{34}$
 34. $\frac{1}{35}$
 35. $\frac{1}{36}$
 36. $\frac{1}{37}$
 37. $\frac{1}{38}$
 38. $\frac{1}{39}$
 39. $\frac{1}{40}$
 40. $\frac{1}{41}$
 41. $\frac{1}{42}$
 42. $\frac{1}{43}$
 43. $\frac{1}{44}$
 44. $\frac{1}{45}$
 45. $\frac{1}{46}$
 46. $\frac{1}{47}$
 47. $\frac{1}{48}$
 48. $\frac{1}{49}$
 49. $\frac{1}{50}$
 50. $\frac{1}{51}$
 51. $\frac{1}{52}$
 52. $\frac{1}{53}$
 53. $\frac{1}{54}$
 54. $\frac{1}{55}$
 55. $\frac{1}{56}$
 56. $\frac{1}{57}$
 57. $\frac{1}{58}$
 58. $\frac{1}{59}$
 59. $\frac{1}{60}$
 60. $\frac{1}{61}$
 61. $\frac{1}{62}$
 62. $\frac{1}{63}$
 63. $\frac{1}{64}$
 64. $\frac{1}{65}$
 65. $\frac{1}{66}$
 66. $\frac{1}{67}$
 67. $\frac{1}{68}$
 68. $\frac{1}{69}$
 69. $\frac{1}{70}$
 70. $\frac{1}{71}$
 71. $\frac{1}{72}$
 72. $\frac{1}{73}$
 73. $\frac{1}{74}$
 74. $\frac{1}{75}$
 75. $\frac{1}{76}$
 76. $\frac{1}{77}$
 77. $\frac{1}{78}$
 78. $\frac{1}{79}$
 79. $\frac{1}{80}$
 80. $\frac{1}{81}$
 81. $\frac{1}{82}$
 82. $\frac{1}{83}$
 83. $\frac{1}{84}$
 84. $\frac{1}{85}$
 85. $\frac{1}{86}$
 86. $\frac{1}{87}$
 87. $\frac{1}{88}$
 88. $\frac{1}{89}$
 89. $\frac{1}{90}$
 90. $\frac{1}{91}$
 91. $\frac{1}{92}$
 92. $\frac{1}{93}$
 93. $\frac{1}{94}$
 94. $\frac{1}{95}$
 95. $\frac{1}{96}$
 96. $\frac{1}{97}$
 97. $\frac{1}{98}$
 98. $\frac{1}{99}$
 99. $\frac{1}{100}$

पहला भंग आयुकर्म के बंधकाल में होता है तथा दूसरा विकल्प आयुकर्म के बंधकाल के अतिरिक्त सर्वदा पाया जाता है।^१

चौदह गुणस्थानों के भंगों की संग्राहक गाथायें निम्न हैं एवं विवरण पृष्ठ ३१ की तालिका में दिया गया है।

मिस्त अपुव्या वायर सगबंधा छच्च बंधए सुहमो ।
उवसंताई एगं अबंधगोऽजोगि एगेगं ॥
मिच्छासायणअविरय देसपमत्त अपमत्तया चेव ।
सत्तट्ठ बंधगा इह, उदया संता य पुण एए ॥
जा सुहमो ता अट्ठ उ उदए संते य होंति पयडीओ ।
सत्तट्ठयसंते खीणि सत्त चत्तारि सेसेमु ॥^२

इस प्रकार मूल प्रकृतियों की अपेक्षा बंध, उदय और सत्त प्रकृतिस्थानों के संवेध भंगों और उनके स्वामियों का कथन करने पदनात् अब उत्तर प्रकृतियों की अपेक्षा बंध, उदय और सत्त प्रकृतिस्थानों के संवेध भंगों का कथन करते हैं। पहले ज्ञानावरण और अंतराय कर्म के संवेध भंग बतलाते हैं।

उत्तर प्रकृतियों के संवेध भंग

ज्ञानावरण, अंतराय कर्म

बंधोदयसंतंसा नाणावरणंतराइए पंच ।
बंधोवरमे वि तहा उदसंता हुंति पंचेव ॥६॥^३

१. भगवत्प्रतिष्ठा बन्धः अष्टविध उदयः अष्टविधा मत्ता, एव विकल्प आयुर्वन्धनात् ।
२. भगवत्प्रतिष्ठा बन्धः अष्टविध उदयः अष्टविधा मत्ता, एव विकल्प आयुर्वन्धनात् ।
३. भगवत्प्रतिष्ठा बन्धः अष्टविध उदयः अष्टविधा मत्ता, एव विकल्प आयुर्वन्धनात् ।

४. भगवत्प्रतिष्ठा बन्धः अष्टविध उदयः अष्टविधा मत्ता, एव विकल्प आयुर्वन्धनात् ।

५. भगवत्प्रतिष्ठा बन्धः अष्टविध उदयः अष्टविधा मत्ता, एव विकल्प आयुर्वन्धनात् ।

६. भगवत्प्रतिष्ठा बन्धः अष्टविध उदयः अष्टविधा मत्ता, एव विकल्प आयुर्वन्धनात् ।

—श्री० कर्मकांड १

शब्दार्थ—बंधोदयसंतंसा—बंध, उदय और सत्ता रूप अंश, नाणावरणंतरादृष्ट—ज्ञानावरण और अंतराय कर्म में, पंच—पांच, बंधोवरमे—बंध के अभाव में, वि—भी, तथा—तथा, उदसंता—उदय और सत्ता, हुंति—होती है, पंचेव—पांच की ।

गाथायं—ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म में बंध, उदय और सत्ता रूप अंश पांच प्रकृतियों के होते हैं । बंध के अभाव में भी उदय और सत्ता पांच प्रकृत्यात्मक ही होती है ।

विशेषार्थ—पूर्व में मूल प्रकृतियों के सामान्य तथा जीवस्थान व गुणस्थानों की अपेक्षा संवेध भंगों को बतलाया गया है । अब इस गाथा में उन मूल कर्मों की उत्तर प्रकृतियों के संवेध भंगों का कथ प्रारम्भ करते हैं ।

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गो और अन्तराय यह आठ मूल कर्मप्रकृतियाँ हैं । इनके क्रमशः पाँच, दो, अष्टादश, चार, व्यालीस, दो और पाँच भेद होते हैं । उन मूल कर्मप्रकृतियों की उत्तर प्रकृतियाँ कहलाती हैं । इनके ना आदि का विवेचन प्रथम कर्मग्रन्थ में किया गया है ।

इस गाथा में ज्ञानावरण और अंतराय कर्म की उत्तर प्रकृति के भंगों को बतलाया है ।

ज्ञानावरण की पाँचों उत्तर प्रकृतियाँ तथा अंतराय की पाँचों उत्तर प्रकृतियाँ मूल मिलाकर इन दस प्रकृतियों का बंध दसवें सूक्ष्ममंगल गुणस्थान तक होता है तथा उनका बंध-विच्छेद दसवें गुणस्थान के अंत में होता है तथा दसवाँ गुणस्थान का विच्छेद बारहवें गुणस्थान के अंत में होता है ।

ज्ञानावरण और अंतराय कर्म की पाँच-पाँच प्रकृति रूप उत्तर प्रकृति का सूक्ष्ममंगल गुणस्थान पर्यन्त है और बंध का अंत दो बार दो बार दोषों की समाप्तिमोह और क्षीणमोह में उदय व अस्त होता है ।

मंग क्रम	बंध	उदय	सत्ता	गुणस्थान	जीवस्थान	काल	
						जघन्य	उत्कृष्ट
१	५	५	५	१ से १० गुणस्थान	१४	अन्तर्मूर्त	देशोन अपाधं पुद्गल परावर्त
२	०	५	५	११ वां १२ वां	१ संज्ञी पर्याप्ति	एक समय	अन्तर्मूर्त

ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म की उत्तर प्रकृतियों के संवेध भंग
बतलाने के बाद अब दर्शनावरण कर्म के संवेध भंगों को बतलाते हैं।

दर्शनावरण कर्म

बंधस्त य संतस्त य पगइट्ठाणाइं तित्ति तुल्लाईं ।
उदयट्ठाणाइं दुवे चउ पणगं दंसणावरणं ॥

शब्दार्थ—बंधस्त—बंध के, य—और, संतस्त—सत्ता ये
य—और, पगइट्ठाणाइं—प्रकृतिस्थान, तित्ति—तीन, तुल्लाईं—
समान, उदयट्ठाणाइं—उदयस्थान, दुवे—दो, चउ—चार, पणगं—
पाँच, दंसणावरणे—दर्शनावरण कर्म में ।

- १ पक्षी मंग का जो उत्कृष्ट काल देशोन अपाधं पुद्गल परावर्त व
है, वह काल के सादि-मान्त विकल्प की अपेक्षा बताया है।
जो जीव उपमानमोह गुणस्थान में च्युत होकर अन्तर्मूर्त काल में
पगइट्ठाणाइं या धीगमोह हो जाता है, उसके उक्त मंग का
कारण अन्तर्मूर्त प्राप्त होता है तथा जो अपाधं पुद्गल परावर्त
कारण से सम्यग्गृष्टि होकर और उपगमथेजि चढ़कर उपमान
होता है। उपमान प्रथमसार में रहने का काल अन्तर्मूर्त क्षेत्र
है। उपमान पर चढ़कर धीगमोह हो जाता है, उसके उक्त
कारण अन्तर्मूर्त अपाधं पुद्गल परावर्त प्रमाण प्राप्त होता है।

1. 22
2. 22
3. 22
4. 22
5. 22
6. 22
7. 22
8. 22
9. 22
10. 22

नौ प्रकृतिक बंधस्थान के काल की अपेक्षा तीन विकल्प अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त । इनमें अनादि-अ विकल्प अभव्यों में होता है, क्योंकि अभव्यों के नौ प्रकृतिक स्थान का कभी भी विच्छेद नहीं पाया जाता है । अनादि-सान्त वि भव्यों में होता है, क्योंकि भव्यों के नौ प्रकृतिक बंधस्थान का काल में विच्छेद पाया जाता है तथा सादि-सान्त विकल्प सम्यक् च्युत होकर मिथ्यात्व को प्राप्त हुए जीवों के पाया जाता है । सादि-सान्त विकल्प का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोन अपाधं पुद्गल परावर्त है । जिसे इस प्रकार समझना कि सम्यक्त्व से च्युत होकर मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ जो जीव मुहूर्त काल के पश्चात् सम्यग्दृष्टि हो जाता है, उसके नौ प्र बंधस्थान का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है तथा जो अपाधं पुद्गल परावर्त काल के प्रारम्भ में सम्यग्दृष्टि होकर अन्तर्मुहूर्त काल तक सम्यक्त्व के साथ रहकर मिथ्यात्व को प्रा जाता है, अनन्तर अपाधं पुद्गल परावर्त काल में अन्तर्मुहूर्त से पर जो पुनः सम्यग्दृष्टि हो जाता है, उसके उत्कृष्ट काल अपाधं पुद्गल परावर्त प्रमाण प्राप्त होता है ।

यह प्रकृतिक बंधस्थान का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और काल एक ही वस्तीस मागर है । वह इस प्रकार है कि जो जीव संयम के साथ सम्यक्त्व को प्राप्त कर अन्तर्मुहूर्त काल के उत्पन्न वा क्षण के निमित्त पर चढ़कर अपूर्वकरण के प्रथम भव्योत्पत्ति करके चार प्रकृतिक बंध करने लगता है, उसके यह बंधस्थान का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त होता है, अथवा जो सम्यग्दृष्टि स्वयंकाल तक उपशम सम्यक्त्व में रहकर पुनः मिथ्यात्व को प्राप्त होता है, उसके भी जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त देगा ज उत्कृष्ट काल एक ही वस्तीस मागर इस प्रकार समझना चाहिए ।

क्षपकश्रेणि में होता है और क्षपकश्रेणि से जीव का प्रतिपात न होता है।

इह प्रकृतिक सत्तास्थान का जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुह है। क्योंकि यह स्थान क्षपक अनिवृत्ति के दूसरे भाग से लेव क्षीणमोह गुणस्थान के उपान्त्य समय तक होता है और उसका जघन्य व उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।

चार प्रकृतिक सत्तास्थान का जघन्य व उत्कृष्ट काल एक सत्ता है। क्योंकि यह स्थान क्षीणमोह गुणस्थान के अंतिम समय में पा जाता है।

दर्शनावरण कर्म के उदयस्थान दो हैं—चार प्रकृतिक और पाँच प्रकृतिक—'उदयट्ठाणाइं दुवे चउ पणंग'। चार प्रकृतिक उदयस्थान नानु, अचक्षु, अवधि और केवल दर्शनावरण—का उदय क्षीणमोह गुणस्थान तक सदैव पाया जाता है। इसीलिए इन चारों का समुदाय एक उदयस्थान है। इन चार में निद्रा आदि पाँचों में से किसी एक प्रकृति के मिना देने पर पाँच प्रकृतिक उदयस्थान होता है। किन्तु ध्रुवोदया प्रकृतियाँ नहीं हैं, क्योंकि उदययोग्य काल के होने पर उनका उदय होता है। अतः यह पाँच प्रकृतिक उदयस्थान कदाचित् प्राप्त होता है।

दर्शनावरण के चार और पाँच प्रकृतिक, यह दो ही उदयस्थान होते तथा इह, मान आदि प्रकृतिक उदयस्थान न होने का कारण है कि निद्राओं में दो या दो से अधिक प्रकृतियों का एक साथ उदय होता है, किन्तु एक काल में एक ही प्रकृति का उदय होता है।

१. यदि निद्राओं में निद्रादिना गुणरुद्धमायान्ति किन्त्येकस्मिन् काले एक प्रकृति का उदय होता है।

शब्दायं—बीयावरण—दूसरे आवरण—दर्शनावरण में, नव-
बंधगतु—नी के बंध के समय, चउपंच—चार या पाँच का, उदय—
उदय, नवसंता—नी प्रकृतियों की सत्ता, छच्चउबंधे—छह और चार
के बंध में, चैयं—पूर्वोक्त प्रकार से उदय और सत्ता, चउबंधुदए—
चार के बंध और चार के उदय में, छलंसा—छह की सत्ता, य—
और, उवरयबंधे—बंध का विच्छेद होने पर, चउपण—चार अथवा
पाँच का उदय, नवंस—नी की सत्ता, चउरुदय—चार का उदय,
छ—छह, च—और, चउसंता—चार की सत्ता ।

मायायं—दर्शनावरण की नी प्रकृतियों का बंध होते
समय चार या पाँच प्रकृतियों का उदय तथा नी प्रकृतियों
की सत्ता होती है । छह और चार प्रकृतियों का बंध होते
समय उदय और सत्ता पूर्ववत् होती है । चार प्रकृतियों का
बंध और उदय रहते सत्ता छह प्रकृतियों की होती है एवं
बंधविच्छेद हो जाने पर चार या पाँच प्रकृतियों का उदय
रहते सत्ता नी की होती है । चार प्रकृतियों का उदय रहने
पर सत्ता छह और चार की होती है ।

विशेषार्थ—माया में दर्शनावरण कर्म के संबन्ध भंगों का विवेचन
दिया गया है ।

दर्शनावरण की नी उत्तर प्रकृतियों का बंध पहले और दूसरे—
मिथ्यात्व य मायादन—गुणस्थान में होता है, तब चार या पाँच
प्रकृतियों का उदय तथा नी प्रकृतियों की सत्ता होती है—‘बीयावरण
नव बंधगतु चउ पंच उदय नव संता’ । चार प्रकृतिक उदयस्थान
अथ दर्शनावरण आदि केरवदर्शनावरण पर्यन्त चार ध्रुवीदयो प्रकृति
का प्रत्यक्ष हिमा गया है तथा पाँच प्रकृतिक उदयस्थान उक्त का
प्रकृतियों के साथ किसी एक निद्रा की मित्रा देने से प्राप्य होता है
दर्शनावरण कर्म के नी प्रकृतिक बंध, नी प्रकृतिक
की ओर का भी भंग प्राप्त होती है—

क्षपक जीव अत्यन्त विशुद्ध होता है, अतः उसके निद्रा और प्रचला प्रकृति का उदय नहीं होता है, जिससे उसमें पहला और तीसरा यह दो भंग प्राप्त होते हैं। पहला भंग—छह प्रकृतिक बंध, चार प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता—क्षपक जीवों के अपूर्वकरण गुणस्थान के प्रथम भाग तक होता है तथा तीसरा भंग—चार प्रकृतिक बंध, चार प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता—क्षपक जीवों के नौवें अनिवृत्तिवादरसंपराय गुणस्थान के संख्यात भागों तक होता है।

क्षपक जीवों के लिये एक और विशेषता समझना चाहिये कि अनिवृत्तिवादर संपराय गुणस्थान में स्थानाद्विचिक का क्षय हो जाने से आगे नौ प्रकृतियों का सत्त्व नहीं रहता है। अतः अनिवृत्तिवादर-संपराय गुणस्थान के संख्यात भागों से लेकर सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान के अन्तिम समय तक चार प्रकृतिक बंध, चार प्रकृतिक उदय और छह प्रकृतिक सत्ता, यह एक और भंग होता है—‘चउबंधुदए छलंसा य’। यह भंग उपर्युक्त चार भागों से पृथक् है।

इस प्रकार दर्शनावरण की उत्तर प्रकृतियों का यथासंभव बंध रहते हुए छिन्ने भंग संभव हैं, इसका विचार किया। अब उदय और सत्ता की अपेक्षा दर्शनावरण कर्म के संभव भागों का विचार करते हैं।

‘उपसमवधे चउपण नवंस’—बंध का विच्छेद हो जाने पर विच्छेद में पाय या पाँव का उदय तथा नौ की सत्ता वाले दो भंग होते हैं। उनके दो भंग इस प्रकार हैं—

१—चार प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता।

२—चार प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता।

इस दोनों भंगों के बनने का कारण यह है कि उपमान्तमोह गुण के दर्शनावरण की सभी नौ प्रकृतियों की मत्ता पाई जाती है और विच्छेद में पाय या पाँव प्रकृतियों का पाया जाता है।

बंधस्थान और उदयस्थान सर्वत्र एक प्रकृतिक होता है किन्तु सत्ता-स्थान दो प्रकृतिक और एक प्रकृतिक, इस प्रकार दो होते हैं।

वेदनीय कर्म के संवेध भंग इस प्रकार हैं—१. असाता का बंध, असाता का उदय और दोनों की सत्ता, २. असाता का बंध, साता का उदय और दोनों की सत्ता, ३. साता का बंध, साता का उदय और दोनों की सत्ता और ४. साता का बंध, असाता का उदय और दोनों की सत्ता।

उक्त चार भंग बंध रहते हुए होते हैं। इनमें से आदि के दो पहले मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में लेकर छठे प्रमत्तसंयत गुणस्थान तक होते हैं। क्योंकि प्रमत्तसंयत गुणस्थान में असाता का बंधविच्छेद हो जाने से आगे इसका बंध नहीं होता है। जिससे सातवें अप्रमत्तसंयत आदि गुणस्थानों में आदि के दो भंग प्राप्त नहीं होते हैं। अंत के दो भंग अर्थात् तीसरा और चौथा भंग मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक होते हैं। क्योंकि साता वेदनीय का बंध तेरहवें सयोगिकेवली गुणस्थान तक ही होता है। बंध का अभाव होने पर उदय व सत्ता की अपेक्षा निम्नलिखित चार भंग होते हैं—

१. असाता का उदय और दोनों की सत्ता।

२. साता का उदय और दोनों की सत्ता।

३. असाता का उदय और असाता की सत्ता।

४. साता का उदय और साता की सत्ता।

इनमें से आदि के दो भंग अयोगिकेवली गुणस्थान के द्विचरम समय तक होते हैं। क्योंकि अयोगिकेवली के द्विचरम समय तक दोनों की सत्ता पाई जाती है। अंत के दो भंग—तीसरा और चौथा—चरम समय में होता है। जिसके द्विचरम समय में साता का क्षय होता है।

असमय में तीसरा भंग—असाता का उदय, असाता की सत्ता होता है तथा जिसके द्विचरम समय में असाता का क्षय

पाँच, तिर्यचायु के नौ, मनुष्यायु के नौ और देवायु के पाँच संवेध भंग होते हैं। जिनका स्पष्टीकरण निम्न प्रकार है—

एक पर्याय में किसी एक आयु का उदय और उसके उदय में बंधने योग्य किसी एक आयु का ही बंध होता है, दो या दो से अधिक का नहीं। इसलिये बंध और उदय की अपेक्षा आयु का एक प्रकृतिक बंधस्थान और एक प्रकृतिक उदयस्थान होता है किन्तु सत्तास्थान दो प्रकृतिक और एक प्रकृतिक इस प्रकार दो होते हैं। क्योंकि जिसने परभव की आयु का बंध कर लिया है, उसके दो प्रकृतिक तथा जिसने परभव की आयु का बंध नहीं किया है, उसके एक प्रकृतिक सत्तास्थान होता है।^१

अब आयुकर्म के संवेध भंगों को बतलाते हैं। आयुकर्म की तीन अवस्थाएँ होती हैं—

१. परभव सम्बन्धी आयुकर्म के बंधकाल से पूर्व की अवस्था

२. परभव सम्बन्धी आयु के बंधकाल की अवस्था।

३. परभव सम्बन्धी आयुबंध के उत्तर-काल की अवस्था।^२

इन तीनों अवस्थाओं को क्रमशः अवन्धकाल, बंधकाल उत्तरकाल कहते हैं। सर्वप्रथम नरकायु के संवेध भंगों का वि करते हैं।

१ आयुनि सामान्येनैक बंधस्थानं चतुर्णामन्यतमत्, परस्परविरुद्धत्वेन तद्विपरीताना बन्धमावन् । उदयस्थानमप्येकम्, तदपि चतुर्णामन्यतमत् तद्विपरीताना उदयानावात् । द्वे सत्तास्थाने, तद्यथा—द्वे एकं च । भव्युर्गमनपतता यावदव्ययं परमवायुनं बध्यते, परमवायुनि च परमव्यये परमदे गोपयन् तावद् द्वे गनी ।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ०

२ अत्राव्ययत्वमवस्थाः, तद्यथा—परमवायुबंधकालात् पूर्ववस्थाः सत्तास्थाने परमव्यये परमवायुर्गमनपतता यावदव्ययं परमवायुनं बध्यते, परमवायुनि च परमव्यये परमदे गोपयन् तावद् द्वे गनी ।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ०

प्रारंभ के पाँच गुणस्थानों में पाया जाता है। क्योंकि तिर्यचगति में आदि के पाँच गुणस्थान ही होते हैं, शेष गुणस्थान नहीं होते हैं।

तिर्यचगति में बन्धकाल के समय निम्नलिखित चार भंग होते हैं—१. नरकायु का बंध, तिर्यचायु का उदय और नरक-तिर्यचायु की सत्ता। २. तिर्यचायु का बंध, तिर्यचायु का उदय और तिर्यच तिर्यचायु की सत्ता, ३. मनुष्यायु का बन्ध, तिर्यचायु का उदय और मनुष्य-तिर्यचायु की सत्ता तथा—४. देवायु का बन्ध, तिर्यचायु का उदय और देव-तिर्यचायु की सत्ता।

इनमें से पहला भंग मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में होता है, क्योंकि मिथ्यादृष्टि गुणस्थान के सिवाय अन्यत्र नरकायु का बंध नहीं होता है। दूसरा भंग मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थानों में होता है, क्योंकि तिर्यचायु का बंध सासादन गुणस्थान तक ही होता है। तीसरा भंग भी पहले और दूसरे गुणस्थान—मिथ्यात्व और सासादन तक होता है, क्योंकि तिर्यच जीव मनुष्यायु का बंध मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थान में ही करते हैं, अविरत सम्यग्दृष्टि और देव विमल गुणस्थान में नहीं। चौथा भंग तीसरे सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिथ्य) गुणस्थान को छोड़कर पाँचवें देशविरत गुणस्थान तक का गुणस्थानों में होता है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में आयुक्रम का बंध न होने से उसका यहाँ ग्रहण नहीं किया गया है।

इसी प्रकार उत्तरबन्धकाल में भी चार भंग होते हैं। जो इस प्रकार हैं—१. तिर्यचायु का उदय और नरक-तिर्यचायु की सत्ता, २. तिर्यचायु का उदय और तिर्यच-तिर्यचायु की सत्ता, ३. तिर्यचायु का उदय और मनुष्य-तिर्यचायु की सत्ता और ४. तिर्यचायु का उदय तथा देव-तिर्यचायु की सत्ता।

ये चारों भंग प्राग्भूत के पाँच गुणस्थानों में होते हैं, क्योंकि तिर्यच नरकायु, तिर्यचायु और मनुष्यायु का बंध कर

इनमें से पहला भंग मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में होता है, क्योंकि मिथ्यादृष्टि गुणस्थान के सिवाय अन्यत्र नरकायु का बंध सम्भव नहीं है। तिर्यचायु का बंध दूसरे गुणस्थान तक होता है, अतः दूसरा भंग मिथ्यात्व, सासादन इन दो गुणस्थानों में होता है। तीसरा भंग भी मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थानों में ही पाया जाता है, क्योंकि मनुष्य तिर्यचायु के समान मनुष्यायु का बन्ध भी दूसरे गुणस्थान तक ही करते हैं। चौथा भंग मिश्र गुणस्थान को छोड़कर अप्रमत्तसंयत सातवें गुणस्थान तक छह गुणस्थानों में होता है। क्योंकि मनुष्यगति में देवायु का बंध अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक पाया जाता है।

उपरतबंधकाल में—१. मनुष्यायु का उदय और नर-मनुष्यायु का सत्त्व, २. मनुष्यायु का उदय और तिर्यच-मनुष्यायु का सत्त्व, ३. मनुष्यायु का उदय और मनुष्य-मनुष्यायु का सत्त्व तथा ४. मनुष्यायु का उदय और देव-मनुष्यायु का सत्त्व, यह चार भंग होते हैं।

उक्त चार भंगों में से आदि के तीन भंग सातवें अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक पाये जाते हैं। क्योंकि यद्यपि मनुष्यगति में नरकायु का बंध पहले गुणस्थान में, तिर्यचायु का बंध दूसरे गुणस्थान तक तथा इसी प्रकार मनुष्यायु का बंध भी दूसरे गुणस्थान तक ही होता है तथापि बंध करने के बाद ऐसे जीव संयम को तो धारण कर सकते हैं, किन्तु श्रेणि-आरोहण नहीं करते हैं। इसलिये उपरतबंध के श्रवण नरक, तिर्यच और मनुष्य आयु इन तीन आयुओं का सत्त्व अप्रमत्त गुणस्थान तक बतलाया है। चौथा भंग प्रारम्भ के मनुष्य गुणस्थानों तक पाया जाना सम्भव है, क्योंकि देवायु का मनुष्य ने श्रवण कर लिया है, उसके उपशमश्रेणि पर आरोहण करेगा। इस प्रकार मनुष्यगति में अबन्ध, बंध और उपरतबंध की अवस्थाओं के कुछ भी भंग होते हैं।

सत्ता पाँचवें गुणस्थान तक, देवायु की सत्ता ग्यारहवें गुणस्थान तक और मनुष्यायु की सत्ता चौदहवें गुणस्थान तक पाई जाती है। गो० कर्मकांड में भी इसी मत को माना है। अन्य दिगम्बर ग्रन्थों में भी यही एक मत पाया जाता है।

यहाँ जो वर्णन किया गया है वह दूसरे मत—उपरस्तबंध की अपेक्षा नरकायु, तिर्यचायु और मनुष्यायु की सत्ता सातवें गुणस्थान तक पाई जाती है—के अनुसार किया है। आचार्य मलयगिरि ने इसी मत के अनुसार सप्ततिका प्रकरण टीका में विवेचन किया है—
“बन्धे तु व्यवच्छिन्ने मनुष्यायुष उदयो नारक-मनुष्यायुषी सती, एष विकल्पोऽप्रमत्तगुणस्थानक यावत्, नारकायुर्वन्धानन्तरं संयमप्रतिपत्तेरपि सम्भवात्। मनुष्यायुष उदयस्तिर्यङ्-मनुष्यायुषी सती, एषोऽपि विकल्पोऽप्रमत्तगुणस्थानकं यावत्। मनुष्यायुष उदयो मनुष्य-मनुष्यायुषी सती, एषोऽपि विकल्पः प्राग्वत्। मनुष्यायुष उदयो देव-मनुष्यायुषी सती, एष विकल्प उपशान्तमोहगुणस्थानकं यावत्, देवायुषि बद्धेऽनुपशमश्चेत्यारोह सम्भवान्।” —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १६०

द्वेताम्बर कर्म साहित्य में इसी मत की मुख्यता है। मनुष्यगति के नौ मन्त्रों का विवरण निम्न प्रकार समझना चाहिये—

क्रम क्रम	कर्म	बन्ध	उदय	सत्ता	गुणस्थान
१	नरक	०	मनुष्य	मनुष्य	सभी चौदह गुण०
२	उपरस्त	नरक	"	नरक, मनुष्य	१
३	"	तिर्यच	"	म० तिर्य०	१, २
४	"	मनुष्य	"	म० म०	१, २
५	"	देव	"	म० दे०	१, २, ४, ५, ६, ७
६	उपरस्त	"	"	म० म०	१, २, ३, ४, ५, ६, ७
७	"	०	"	म० तिर्य०	१, २, ३, ४, ५, ६, ७
८	"	०	"	म० म०	१, २, ३, ४, ५, ६, ७
९	"	०	"	म० दे०	१ से १३ गुण०

करने पर मिश्र गुणस्थान में नरकादि गतियों में क्रम से ३,५,५,३, भंग होते हैं और चौथे गुणस्थान में देव, नरक गति में तो तिर्यचायु का बंध रूप भंग नहीं होने से चार-चार भंग हैं तथा मनुष्य-तिर्यच-गति में आयु बंध की अपेक्षा नरक, तिर्यच, मनुष्य आयु बंधरूप तीन भंग न होने से छह-छह भंग हैं, क्योंकि इनके बंध का अभाव सासादन गुणस्थान में हो जाता है। देशविरत गुणस्थान में तिर्यच और मनुष्यों के बंध, अवंध और उपरतबंध की अपेक्षा तीन-तीन भंग होते हैं। छठवें, सातवें गुणस्थान में मनुष्य के ही और देवायु के बंध की ही अपेक्षा तीन-तीन भङ्ग होते हैं। इस प्रकार मिथ्यादृष्टि आदि सात गुणस्थानों में सब मिलाकर अपुनरुक्त भङ्ग क्रम से २८, २६, १६, २०, ६, ३, ३ हैं।^१

वेदनीय और आयु कर्म के संवेध भङ्गों का विचार करने के अनन्तर अब गोत्रकर्म के भङ्गों का विचार करते हैं।

गोत्रकर्म के संवेध भंग

गोत्र कर्म के दो भेद हैं—उच्चगोत्र, नीचगोत्र। इनमें से एक गोत्र के एक काल में किसी एक का बंध और किसी एक का उदय होता है। क्योंकि दोनों का बंध या उदय परस्पर विरुद्ध है। जब उच्च गोत्र का बंध होता है तब नीच गोत्र का बंध नहीं और नीच गोत्र के बंध के समय उच्च गोत्र का बंध नहीं होता है।

१. इस गोत्र के प्रतिरिक्त गो० कर्मानुष्ठान में उपसमर्थेणि और दापकर्थेणि की अपेक्षा मनुष्यगति में आयुकर्म के कुछ और भंग बतलाये हैं कि उपसमर्थेणि में देवायु का भी बंध न होने से देवायु के अवन्ध, उपरत-बंध की अपेक्षा दो-दो भंग हैं तथा दापकर्थेणि में उपरतबंध के भी न होने से दापक की अपेक्षा एक-एक ही भंग है। अतः उपसमर्थेणि वाले १५० गुणस्थानों में दो-दो भंग और उमर के बाद दापकर्थेणि में अपूर्वविरत के १५० गुणस्थानों में दो-दो भंग और उमर के बाद दापकर्थेणि में अपूर्वविरत के १५० गुणस्थानों में दो-दो भंग बतलाये गये हैं।

गोत्रकर्म के सामान्य से भंग वतलाने के पश्चात् अब इन स्थानों के संवेध भङ्ग वतलाते हैं। गोत्रकर्म के सात संवेध भङ्ग इस प्रकार हैं—

१. नीचगोत्र का बंध, नीचगोत्र का उदय और नीचगोत्र की सत्ता ।
२. नीचगोत्र का बंध, नीचगोत्र का उदय और नीच-उच्च गोत्र की सत्ता ।
३. नीचगोत्र का बंध, उच्चगोत्र का उदय और उच्च-नीच गोत्र की सत्ता ।
४. उच्चगोत्र का बंध, नीचगोत्र का उदय और उच्च-नीच गोत्र की सत्ता ।
५. उच्च गोत्र का बंध, उच्चगोत्र का उदय और उच्च-नीच गोत्र की सत्ता ।
६. उच्चगोत्र का उदय और उच्च-नीच गोत्र की सत्ता ।
७. उच्चगोत्र का उदय और उच्चगोत्र की सत्ता ।

उनमें से पहला भङ्ग उच्चगोत्र की उद्वलना करने वाले अग्नि-
कार्यक और वायुकायिक जीवों के होता है तथा ऐसे जीव एकेन्द्रिय,
विकल्पय और पंचेन्द्रिय निर्यचों में उत्पन्न होते हैं तो उनके भी
अन्तर्मूर्त काय वक्र के निये होता है। क्योंकि अन्तर्मूर्त काय के
परमाणु उन एकेन्द्रिय आदि जीवों के उच्चगोत्र का बंध नियम से हो
जाता है। दूसरा और तीसरा भङ्ग मिथ्याहृष्टि और सासादन इन
दो परमाणुओं में पाया जाता है, क्योंकि नीचगोत्र का बंधविच्छेद

[illegible]

—महाभारत प्रकरण टीका, पृ० १३१

गुणस्थानों की अपेक्षा गोत्रकर्म के भङ्ग मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थान में क्रम से पाँच और चार होते हैं। मिश्र आदि तीन गुणस्थानों में दो-दो भङ्ग हैं। प्रमत्त आदि आठ गुणस्थानों में गोत्र-कर्म का एक-एक भङ्ग है और अयोगिकेवली गुणस्थान में दो भङ्ग होते हैं।^१

इस प्रकार से वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म के भंगों को बतलाने के पश्चात् अब पूर्व सूचनानुसार—मोहं परं वोच्छं—मोहनीय कर्म के बंधस्थानों आदि का कथन करते हैं।

मोहनीय कर्म

बावीस एकवीसा, सत्तरसा तेरसेव नव पंच ।

चउ तिग दुगं च एकं बंधट्टाणाणि मोहस्स ॥१०॥^२

शब्दार्थ—बावीस—वाईस, एकवीसा—इक्कीस, सत्तरसा—सत्तर, तेरसेव—तेरह, नव—नौ, पंच—पाँच, चउ—चार, तिग—

१ (क) बंधट्ट ऊडण्णयं चि य इयरं वा दो वि संत चऊ नंगा ।

नीएगु तिसु वि पढमो अवंधगे दोणि उच्चुदए ॥

—पंचसंग्रह सप्ततिका, भा० १६

(ग) मिच्छादि गोदनंगा पण चटु तिसु दोणि अट्टठाणेमु ।

एवेवस जोगिजिणे दो नंगा होंति नियमेण ॥

—गो० कर्मकांड, भा० १३

२ नृणा कीजिये—

(क) बावीसमेववीसं सत्तरस तेरसेव नव पंच ।

चउतिगदुगं च एकं बंधट्टाणाणि मोहस्स ॥

—गो० कर्मकांड ४६

(ग) दुग्गस कीसा सत्तर तेरस नव पंच चउर ति दु एगो ।

चउर एति दुग सत्तरस पणउपचमेमु मोहस्स ॥

—पंचसंग्रह सप्ततिका, भा० १६

4/19/14 to 4/20/14

22

4/21/14

4/22/14

4/23/14

4/24/14

4/25/14

4/26/14

4/27/14

4/28/14

4/29/14

4/30/14

5/1/14

5/2/14

5/3/14

5/4/14

5/5/14

मोहनीय कर्म के दस बंधस्थानों में से पहला स्थान बाईस प्रकृति है। इसका कारण यह है कि तीन वेदों का एक साथ बंध नहीं होता है, किन्तु एक काल में एक ही वेद का बंध होता है। चाहे वह पुरुष वेद का हो, स्त्रीवेद का हो या नपुंसकवेद का हो तथा हास्य-रति युगल और अरति-शोक युगल, इन दोनों युगलों में से एक समय में एक युगल का बंध होगा। दोनों युगल एक साथ बंध को प्राप्त नहीं होते हैं। अतः छत्तीस प्रकृतियों में से दो वेद और दो युगलों में से किसी एक युगल के कम करने पर बाईस प्रकृतियाँ शेष रहती हैं। इन बाईस प्रकृतियों का बंध मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में होता है।

उक्त बाईस प्रकृतिक बंधस्थान में से मिथ्यात्व को कम कर देने पर इक्कीस प्रकृतिक बंधस्थान होता है। यह स्थान सासादन गुणस्थान में होता है। क्योंकि मिथ्यात्व का विच्छेद पहले मिथ्यात्व गुणस्थान में हो जाता है। यद्यपि दूसरे सासादन गुणस्थान में नपुंसक वेद का भी बंध नहीं होता है, लेकिन पुरुषवेद या स्त्रीवेद के बंध से उसकी पूर्ति हो जाने से संख्या इक्कीस ही रहती है।

अनन्तानुबन्धी कषाय चतुष्क का बन्ध दूसरे गुणस्थान तक ही होता है। अतः इक्कीस प्रकृतियों में से अनन्तानुबन्धी चतुष्क को कम कर देने से मिश्र और अविरत सम्यग्दृष्टि—तीसरे, चौथे—गुणस्थान में मन्त्र प्रकृतिक बंधस्थान प्राप्त होता है। यद्यपि इन गुणस्थानों में स्त्रीवेद का बंध नहीं होता है, तथापि पुरुषवेद का वहाँ बंध होने से मन्त्र प्रकृतिक बंधस्थान बन जाता है।

देवविमति गुणस्थान में तेरह प्रकृतिक बंधस्थान होता है। क्योंकि अत्रत्याग्यानावरण कषाय चतुष्क का बन्ध चौथे अविमन्यग्दृष्टि गुणस्थान तक ही होता है। अतः मन्त्र प्रकृतिक बंधस्थान में से अत्रत्याग्यानावरण चतुष्क को कम कर देने पर पाँचवें देवविमति गुणस्थान में तेरह प्रकृतिक बंधस्थान प्राप्त होता है।

1000

1000

1000

1000

1000

1000

1000

1000

1000

1000

1000

1000

1000

1000

1000

1000

1000

1000

1000

1000

1000

1000

1000

1000

1000

1000

1000

शब्दार्थ—एककं—एक, व—और, दो—दो, व—और, चउरो—चार, एत्तो—इससे आगे, एक्काहिया—एक-एक प्रकृति अधिक, दस—दस तक, उक्कोसा—उत्कृष्ट से, ओहेण—सामान्य से, मोहणिज्जे—मोहनीय कर्म में, उदयट्ठाणा—उदयस्थान, नव—नौ, हवन्ति—होते हैं।

गायार्थ—एक, दो और चार और चार से आगे एक-एक प्रकृति अधिक उत्कृष्ट दस प्रकृति तक के नौ उदयस्थान मोहनीय कर्म के सामान्य से होते हैं।

विशेषार्थ—गाथा में मोहनीय कर्म के उदयस्थानों की संख्या बतलाई है कि वे नौ होते हैं। इन उदयस्थानों की संख्या एक, दो, चार, पाँच, छह, सात, आठ, नौ और दस प्रकृतिक है।

ये उदयस्थान पश्चादानुपूर्वी के क्रम से बतलाये हैं। गणनानुपूर्वी के तीन प्रकार हैं—१. पूर्वानुपूर्वी, २. पश्चादानुपूर्वी और ३. यत्रतत्रानुपूर्वी।^१ इनकी व्याख्या इस प्रकार है कि जो पदार्थ जिस क्रम उत्पन्न हुआ हो या जिस क्रम से सूत्रकार के द्वारा स्थापित किया गया हो, उसकी उसी क्रम से गणना करना पूर्वानुपूर्वी है। विलोमक्रम अर्थात् अन्त से लेकर आदि तक गणना करना पश्चादानुपूर्वी है और अपनी इच्छानुसार जहाँ कहीं से अपने इच्छित पदार्थ को ग्रहण मानकर गणना करना यत्रतत्रानुपूर्वी कहलाता है। यहाँ ग्रन्थकार इन तीन गणना की आनुपूर्वियों में से पश्चादानुपूर्वी के क्रम से मोहनीय कर्म के उदयस्थान गिनाये हैं।

मोहनीय कर्म का उदय दसवें सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान तक होता है। अतः पश्चादानुपूर्वी गणना क्रम से एक प्रकृतिक उदयस्थान सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान में होता है क्योंकि वहाँ संज्वलन लोभ का उदय होता है। अतः इस प्रकार गणना चाहिये कि नौवें गुणस्थान के अगमन पर

इति विविधा गणना तं जहा—पुत्राणुपूर्वी, पञ्चानुपूर्वी इति।

—अनुयोगद्वारं सूत्र १३

उदयस्थान में मिथ्यात्व को मिलाने पर दस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यह उदयस्थान मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में होता है।^१

मोहनीय कर्म के उक्त नौ उदयस्थान सामान्य से बतलाये हैं। क्योंकि तीसरे मिश्र गुणस्थान में मिश्र मोहनीय का और चौथे से सातवें गुणस्थान तक वेदक सम्यग्दृष्टि के सम्यक्त्व मोहनीय का उदय हो जाता है। इसलिये सभी विकल्पों को न बतलाकर यहाँ तो सूचना मात्र की है। विशेष विस्तार से वर्णन आगे किया जा रहा है। प्रत्येक उदयस्थान का जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है।

मोहनीय कर्म के उदयस्थानों का विवरण इस प्रकार है—

उदयस्थान	गुणस्थान	काल	
		जघन्य	उत्कृष्ट
१ प्र०	नीवें का अवेद भाग व दसवां	एक समय	अन्तर्मुहूर्त
२ „	नीवें का मवेद भाग	„	„
४ „	६, ७, ८	„	„
५ „	६, ७, ८	„	„
६ „	६, ७, ८	„	„
७ „	पाँचवां	„	„
८ „	४, ३	„	„
९ „	२	„	„
१० „	१	„	„

ये नौ कर्म के नौ उदयस्थानों की संवत्स्रीय गायत्री दस प्रकार है—

सप्तमः सप्तमः सप्तमः सप्तमः सप्तमः सप्तमः सप्तमः सप्तमः सप्तमः सप्तमः ।

सप्तमः सप्तमः सप्तमः सप्तमः सप्तमः सप्तमः सप्तमः सप्तमः सप्तमः सप्तमः ॥

विशेषार्थ—उक्त दो गाथाओं में मोहनीय कर्म की प्रकृतियों के सत् स्थानों में प्रकृतियों की संख्या बतलाई है कि अमुक सत्तास्थान इतनी प्रकृतियों का होता है। सत्तास्थानों के भेदों का संकेत कर के बाद बंध, उदय और सत्ता स्थानों के संवेध भंगों की अनेकता सूचना दी है। जिनका वर्णन आगे यथाप्रसंग किया जा रहा है।

मोहनीय कर्म के कितने सत्तास्थान होते हैं, इसका संकेत कर हुए ग्रंथकार ने बताया है कि 'संतस्स पगइठाणाइं ताणि मोहं हुंति पत्तरस्स'—मोहनीय कर्म प्रकृतियों के सत्तास्थान पन्द्रह होते हैं। ये पन्द्रह सत्तास्थान कितनी-कितनी प्रकृतियों के हैं, उनका स्पष्ट करण क्रमशः इस प्रकार है—अट्ठाईस, सत्ताईस, छब्बीस, चौबीस, तेईस, बारह, द्वादसी, तेरह, बारह, ग्यारह, पाँच, चार, तीन, और एक प्रकृतिक।^१ कुल मिलाकर ये पन्द्रह सत्तास्थान^२ होते हैं।

१ (क) अट्ठमसत्तमच्छत्तमगवउत्तिगदुगएककगहिआ बीसा ।

तेरम बारिकसारम संते पंचाइ जा एकं ॥

—पंचसंग्रह सप्ततिका गा० १

(ग) अट्ठममनयद्धाकय चट्ठमिदुगेगाधिगाणि चौसाणि ।

तेरम बारियारं पणादि एगुणयं सत्तं ॥

—गो० कर्मकांड गा० ५०

२ इन पन्द्रह सत्तास्थानों में से प्रत्येक स्थान में ग्रहण की गई प्रकृतियों का यह गाथायें इस प्रकार हैं—

उप मोहमाय मोहन कसाय दंसणनिमं नि अडवीसा ।

सम्मनूयणणेण मिच्छे मीमे य सगवीसा ॥

दुल्लोसा पुण दुत्तिआ मीमुत्तलणे अणाइ मिच्छते ।

सम्महिदुत्तवीसा अणत्तए होइ चउवीसा ॥

मिच्छे मीमे ममे मीमे नि-दुमीम एउवीसा य ।

अट्ठमए तेरम मनुवाए होइ बारममं ॥

मीमे मीमे मीमे मीमे पंचवउ पुत्तिमवीसे ।

वीउ ममे मीमे मीमे मीमे य कममी उ ॥

मीमे उउ ममे मीमे मीमे पत्तरम मंडाणाणि ।

—पन्द्रह कर्मग्रन्थ आहृत टिप्पण, गा० २८६

100

अनन्तानुबन्धी चतुष्क की विसंयोजना : जयधवला

अट्टाईस प्रकृतिक सत्तास्थान का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त अनन्तानुबन्धी चतुष्क की विसंयोजना करने से जब चौबीस प्रकृतिक सत्ता वाला होता है, तब प्राप्त होता है। वेदक सम्यग्दृष्टि जीव के अनन्तानुबन्धी कपाय चतुष्क की विसंयोजना करने में श्वेताम्बर और दिगम्बर आचार्य एकमत हैं। किन्तु इसके अतिरिक्त जयधवला टीका में एक मत का उल्लेख और किया गया है। वहाँ बताया गया है कि उपशम सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबन्धी चतुष्क की विसंयोजना करते हैं, इस विषय में दो मत हैं। एक मत का यह मानना है कि उपशम सम्यक्त्व का काल थोड़ा है और अनन्तानुबन्धी चतुष्क की विसंयोजना का काल बड़ा है, अतः उपशम सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबन्धी चतुष्क की विसंयोजना नहीं करता है तथा दूसरा मत है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्क के विसंयोजना काल से उपशम सम्यक्त्व का काल बड़ा है इसलिए उपशम सम्यग्दृष्टि जीव भी अनन्तानुबन्धी चतुष्क की विसंयोजना करता है। जिन उच्चारणा वृत्तियों के आधार से जयधवला टीका लिखी गई है, उनमें इस दूसरे मत को प्रधानता दी है।

अट्टाईस प्रकृतिक सत्तास्थान का उत्कृष्ट काल, मतभिन्नता

पञ्चमसंग्रह के सप्ततिका-संग्रह की गाथा ४१ व उसकी टीका में अट्टाईस प्रकृतिक सत्तास्थान का उत्कृष्टकाल पल्य का असंख्यात भाग अधिक एक सौ बत्तीस सागर बतलाया है। लेकिन दिगम्बर परम्परा में उसका उत्कृष्ट काल पल्य के तीन असंख्यात भाग अधिक एक सौ बत्तीस सागर बतलाया है। इस मतभेद का स्पष्टीकरण यह है—

श्वेताम्बर साहित्य में बताया है कि द्वाव्वीस प्रकृतिक सत्ता का अन्तर्मुहूर्त ही नियन्त्रण का उद्गम करके उपशम सम्यग्दृष्टि होता है। अतः उपशम सम्यक्त्व की उद्भवना के अन्तिम काल में ही

स्थान प्राप्त किया और सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल के मिथ्यात्व का क्षय कर देता है तो उसके चौबीस प्रकृतिक सत्तास्थान का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त देखा जाता है तथा अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना करने के बाद जो वेदक सम्यग्दृष्टि ६६ सागर तक वेदक (क्षायोपशमिक) सम्यक्त्व के साथ रहा, फिर अन्तर्मुहूर्त के लिये सम्यग्मिथ्यादृष्टि हुआ और इसके बाद पुनः ६६ सागर काल तक वेदक सम्यग्दृष्टि रहा। अनन्तर मिथ्यात्व की क्षपणा की। इस प्रकार अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना होने के समय से लेकर मिथ्यात्व की क्षपणा होने तक के काल का योग एक सौ बत्तीस सागर होता है। इसीलिये चौबीस प्रकृतिक सत्तास्थान का उत्कृष्टकाल एक सौ बत्तीस सागर बताया है।

चौबीस प्रकृतिक सत्तास्थान में से मिथ्यात्व के क्षय हो जाने पर तेईस प्रकृतिक सत्तास्थान होता है और यह स्थान चौथे से लेकर सातवें गुणस्थान तक पाया जाता है। सम्यग्मिथ्यात्व की क्षपणा का जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होने से इस स्थान का जघन्य व उत्कृष्ट काल भी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।

तेईस प्रकृतिक सत्तास्थान में से सम्यग्मिथ्यात्व के क्षय हो जाने पर बारह प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। यह स्थान भी चौथे से लेकर सातवें गुणस्थान तक पाया जाता है। इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। क्योंकि सम्यक्त्व की क्षपणा में इतना विलम्ब होता है।

बारह प्रकृतिक सत्तास्थान में से सम्यक्त्व मोहनीय प्रकृति क्षय हो जाने पर दसवीं प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। यह चौथे से लेकर सातवें गुणस्थान तक पाया जाता है। इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। क्योंकि इतना विलम्ब होता है कि क्षायिक सम्यक्त्व

दो समय कम दो आवली प्रमाण है। क्योंकि छह नोकपायों के क्षय होने पर पुरुषवेद का दो समय कम दो आवली काल तक सत्त्व देखा जाता है। इसके बाद पुरुषवेद का क्षय हो जाने से चार प्रकृतिक चार प्रकृतिक में से संज्वलन क्रोध का क्षय होने पर तीन प्रकृति और तीन प्रकृतिक में से संज्वलन मान का क्षय हो जाने पर प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। ये नौवें गुणस्थान में प्राप्त होते। इनका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

दो प्रकृतिक सत्तास्थान में से संज्वलन माया का क्षय होने एक प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। यह नौवें और दसवें गुणस्थान प्राप्त होता है तथा इसका काल जघन्य व उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

मोहनीय कर्म के उक्त अट्ठाईस प्रकृतिक आदि पन्द्रह सत्तास्थान का क्रम आचार्य मलयगिरि ने संक्षेप में बतलाया है। उपयोगी होने उक्त अंश यहाँ अविकल रूप में प्रस्तुत करते हैं—

‘तत्र सर्वप्रकृतिसमुदायोऽष्टाविंशतिः । ततः सम्यक्त्वे उत्पत्तिः सप्तविंशतिः । ततोऽपि सम्यग्मिथ्यात्वेऽव्यवहिते षड्विंशतिः, अनाविहिते दृष्टेर्षा षड्विंशतिः । अष्टाविंशतिसत्कर्मणोऽनन्तानुबन्धिचतुर्विंशतिः । ततोऽपि मिथ्यात्वे क्षपिते त्रयोविंशतिः । ततोऽपि सम्यग्मिथ्यात्वे क्षपिते द्वाविंशतिः । ततः सम्यक्त्वे क्षपिते एकाविंशतिः । ततोऽष्टस्वप्नप्रत्यासन्नप्रत्याख्यानाप्ररणसंज्ञेषु कषायेषु क्षीणेषु त्रयोदशः । ततो नपुंसक वेदे क्षीणद्वादश । ततोऽपि स्त्रीवेदे क्षपिते एकादश । ततः षट्सु नोकपायेषु क्षीणपञ्च । ततोऽपि पुरुषवेदे क्षीणे चतस्रः । ततोऽपि संज्वलनप्रोद्ये क्षपिते तिस्रः । ततोऽपि संज्वलनमाने क्षपिते द्वे । ततोऽपि संज्वलन मायायां क्षपितायां प्रकृतिः शनोति ।’

सत्तास्थानों के स्वामी और काल सम्बन्धी दिगम्बर साहित्य का मत

स्वयंसाम्बर नामप्रत्ययिक मत के समान ही दिगम्बर कर्ममते

१. अष्टाविंश प्रकरण टीका, पृ० १५३

इसका तात्पर्य यह है कि सम्यक्त्व की उद्वलना में अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर जो त्रिकरण क्रिया का प्रारम्भ कर देता है, और उद्वलना होने के बाद एक समय का अन्तराल देकर जो उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त हो जाता है, उसके छब्बीस प्रकृतिक सत्तास्थान का जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है।

कर्मग्रन्थ में चौबीस प्रकृतिक सत्तास्थान का उत्कृष्ट काल एक सौ बत्तीस सागर बताया है, जबकि कपायप्राभृत की चूर्णि में उक्त स्थान का उत्कृष्ट काल साधिक एक सौ बत्तीस सागर बताया है—

‘चउबीसविहत्ती केवचिरं कालादो ? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उवकस्सेण पं छावट्टिसागरोवमाणि सादिरैयाणि ।’

इसका स्पष्टीकरण जयध्वला टीका में किया गया है कि उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करके जिसने अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना की। अनन्तर छियासठ सागर काल तक वेदक सम्यक्त्व के साथ रहा, फिर अन्तर्मुहूर्त तक सम्यग्मिथ्यादृष्टि रहा। अनन्तर मिथ्यात्व की क्षण की। उस प्रकार अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना हो चुकने के समय में नेकर मिथ्यात्व की क्षण होने तक के काल का योग साधिक एक सौ बत्तीस सागर होता है।

इसी प्रकृतिक सत्तास्थान का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल साधिक तैत्तीय सागर दोनों परम्पराओं में समान रूप से माना है। कपायप्राभृत चूर्णि में लिखा है—

‘एउउबीसविहत्ती केवचिरं कालादो ? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उवकस्सेण पं छावट्टिसागरोवमाणि सादिरैयाणि ।’

उक्त उत्कृष्ट काल का जयध्वला में स्पष्टीकरण करते हुए वेदिक और अनन्तानुबन्धी के बीच या नारक मर कर एक पूर्व के उपाय समुदाय में बताया गया है। अनन्तर आठ वर्ष के बाद



मोहनीय कर्म के पन्द्रह सत्तास्थानों का गुणस्थान, काल सहित विवरण इस प्रकार है—

सत्ता स्थान	गुणस्थान	जघन्यकाल	उत्कृष्टकाल
२८	१ से ११	अन्तर्मुहूर्त	साधिक १३२ सागर
२७	पहला व तीसरा	पत्य का असं० भाग	पत्य का असंख्यातवां भाग
२६	१	अन्तर्मुहूर्त	देशीय अपाघं पुद्० परावर्त
२४	३ से ११	अन्तर्मुहूर्त	१३२ सागर
२३	४ से ७	"	अन्तर्मुहूर्त
२२	४ से ७	"	"
२१	४ से ११	"	साधिक ३३ सागर
१३	६ वां	"	अन्तर्मुहूर्त
१२	"	"	"
११	"	"	"
१०	"	दो समय कम दो आवली	दो समय कम दो आवली
९	"	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त
८	"	"	"
७	"	"	"
६	"	"	"
५	मौरीय व	"	"
४	पुद्गल	"	"

साता का बंध, असाता का उदय और साता-असाता की सत्ता; चौथा भंग—साता का बंध, साता का उदय और साता-असाता की सत्ता, यह दो विकल्प पहले मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर तेरहवें सयोगिकेवली गुणस्थान तक पाये जाते हैं। इसके बाद बंध का अभाव हो जाने से पाँचवां भंग—असाता का उदय और साता-असाता की सत्ता तथा छठा भंग—साता का उदय और साता-असाता दोनों की सत्ता, यह दो भंग अयोगिकेवली गुणस्थान में द्विचरम समय तक प्राप्त होते हैं और चरम समय में सातवां भंग—असाता का उदय और असाता की सत्ता तथा आठवां भंग—साता का उदय और साता की सत्ता, यह दो भंग पाये जाते हैं।

मयोगिकेवली और अयोगिकेवली द्रव्यमन के सम्बन्ध से संज्ञी कहे जाते हैं, अतः संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान में वेदनीय कर्म के आठ भंग मानने में किसी प्रकार का विरोध नहीं है।

इस प्रकार ये वेदनीय कर्म के भंगों का कथन करके अब गोत्र कर्म के भंगों को बतलाते हैं कि 'सत्तग तिगं च गोए'—ये इस प्रकार हैं—

गोत्रकर्म के पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवस्थान में सात भंग प्राप्त होते हैं। वे सात भंग इस प्रकार हैं—१. नीच का बंध, नीच का उदय और नीच की सत्ता, २. नीच का बंध, नीच का उदय और उच्च-नीच दोनों की सत्ता, ३. नीच का बंध, उच्च का उदय और उच्च-नीच दोनों की सत्ता, ४. उच्च का बंध, नीच का उदय और उच्च-नीच दोनों की सत्ता, ५. उच्च का बंध, उच्च का उदय और उच्च-नीच की सत्ता, ६. उच्च का उदय और उच्च-नीच दोनों की सत्ता तथा ७. उच्च का उदय और उच्च की सत्ता।

उक्त सात भंगों में से पहला भंग उन संज्ञियों को होता है जो

पञ्जत्तापञ्जत्तग समणे पञ्जत्त अमण सेसेसु ।

अट्ठावीसं दसगं नवगं पणगं च आउत्स ॥

अर्थात्—पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय, अपर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय, पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय और शेष ग्यारह जीवस्थानों में आयु कर्म के क्रमशः २८, १०, ६ और ५ भंग होते हैं ।

आशय यह है कि पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवस्थान में आयु कर्म के २८ भंग होते हैं । अपर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवस्थान में १० तथा पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवस्थान में ६ भंग होते हैं । इन तीन जीवस्थानों से शेष रहे ग्यारह जीवस्थानों में से प्रत्येक में पांच-पांच भंग होते हैं ।

पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवस्थान में आयु कर्म के अट्ठाईस भंग इस प्रकार समझना चाहिये कि पहले नारकों के ५, तिर्यकों के ६, मनुष्यों के ६ और देवों के ५ भंग बतला आये हैं, जो कुल मिलाकर २८ भंग होते हैं, वे ही यहां पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय के २८ भंग कहे गये हैं । विशेष विवेचन इस प्रकार है—

नारक जीव के १. परभव की आयु के बंधकाल के पूर्व नरकायु का उदय, नरकायु की सत्ता, २. परभव की आयु बंध होने के समय तिर्यन्त्रायु का बंध, नरकायु का उदय, नरक-तिर्यन्त्रायु की सत्ता अथवा ३. मनुष्यायु का बंध, नरकायु का उदय, नरक-मनुष्यायु की सत्ता, ४. परभव की आयु बंध के उत्तरकाल में नरकायु का उदय और नरक-तिर्यन्त्रायु की सत्ता अथवा ५. नरकायु का उदय और मनुष्य-नरकायु की सत्ता, यह पांच भंग होते हैं । नारक जीव भवप्रत्यय से ही देव और नरकायु बंध नहीं करते हैं अतः परभव की आयु बंधकाल में और त्रयोदश काल में देव और नरकायु का विकल्प सम्भव नहीं होने से आयु कर्म के पांच विकल्प ही होते हैं ।

में अपर्याप्त नाम कर्म का उदय नहीं होता है तथा इनके परभव संबंधी मनुष्यायु तथा तिर्यचायु का ही बन्ध होता है, अतः इनके मनुष्यगति की अपेक्षा ५ और तिर्यचगति की अपेक्षा ५ भंग, इस प्रकार कुल दस भंग होते हैं। जैसे कि तिर्यचगति की अपेक्षा १. आयुबंध के पहले तिर्यचायु का उदय और तिर्यचायु की सत्ता २. आयुबंध के समय तिर्यचायु का बंध, तिर्यचायु का उदय और तिर्यच-तिर्यचायु की सत्ता अथवा ३. मनुष्यायु का बंध, तिर्यचायु का उदय और मनुष्य-तिर्यचायु की सत्ता, ४. बंध की उपरति होने पर तिर्यचायु का उदय और तिर्यच-तिर्यचायु की सत्ता अथवा ५. तिर्यचायु का उदय और मनुष्य-तिर्यचायु की सत्ता। कुल मिलाकर ये पाँच भंग हुए।

इसी प्रकार मनुष्यगति की अपेक्षा भी पाँच भंग समझना चाहिये, लेकिन तिर्यचायु के स्थान पर मनुष्यायु को रखें। जैसे कि आयु बंध के पहले मनुष्यायु का उदय और मनुष्यायु की सत्ता आदि।

पर्याप्त अमंजी पंचेन्द्रिय जीव तिर्यच ही होता है और उसके चारों आयुओं का बंध सम्भव है, अतः यहाँ आयु के वे ही नौ भंग होते हैं जो सामान्य तिर्यचों के बतलाये हैं।

इस प्रकार से तीन जीवस्थानों में आयुकर्म के भंगों को बतलाने के बाद शेष रहे ग्यारह जीवस्थानों के भंगों के बारे में कहते हैं कि उनमें से प्रत्येक में पाँच-पाँच भंग होते हैं। क्योंकि शेष ग्यारह जीवस्थानों के जीव तिर्यच ही होते हैं और उनके देवायु व नरकायु का बंध नहीं होता है, अतः मंजी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त तिर्यचों के जो पाँच भंग बताये हैं, वे ही यहाँ जानना चाहिये कि बंधकाल से पूर्व का एक भंग, बंधकाल के समय के दो भंग और उपरान्त बंधकाल के दो भंग।

शब्दार्थ—अद्वसु—आठ जीवस्थानों में, पंचसु—पाँच जीवस्थानों में, एगे—एक जीवस्थान में, एग—एक, दुगं—दो, दस—दस, य—और, मोहबंधगए—मोहनीय कर्म के बंधगत स्थानों में, तिग चउ नव—तीन चार और नौ, उदयगए—उदयगत स्थान, तिग तिग पन्तरस—तीन, तीन और पन्द्रह, सतंम्मि—सत्ता के स्थान।

गाथार्थ—आठ, पाँच और एक जीवस्थान में मोहनीय कर्म के अनुक्रम से एक, दो और दस बंधस्थान, तीन, चार और नौ उदयस्थान तथा तीन, तीन और पन्द्रह सत्तास्थान होते हैं।

विशेषार्थ—इस गाथा में मोहनीय कर्म के जीवस्थानों में बंध, उदय और सत्ता स्थान बतलाये हैं और जीवस्थानों तथा बंधस्थानों, उदयस्थानों तथा सत्तास्थानों की संख्या का संकेत किया है कि कितने जीवस्थानों में मोहनीय कर्म के कितने बंधस्थान हैं, कितने उदयस्थान हैं और कितने सत्तास्थान हैं। परन्तु यह नहीं बताया है कि वे कौन-कौन होते हैं। अतः इसका स्पष्टीकरण नीचे किया जा रहा है।

आठ, पाँच और एक जीवस्थान में यथाक्रम से एक, दो और दस बंधस्थान हैं। अर्थात् आठ जीवस्थानों में एक बंधस्थान है, पाँच जीवस्थानों में दो बंधस्थान हैं और एक जीवस्थान में दस बंधस्थान हैं। उनमें में पहले आठ जीवस्थानों में एक बंधस्थान होने को स्पष्ट करते हैं कि पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय, अपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय, अपर्याप्त गारर एकेन्द्रिय, अपर्याप्त द्वीन्द्रिय, अपर्याप्त त्रीन्द्रिय, अपर्याप्त चतु-रिन्द्रिय, अपर्याप्त अमंजी पंचेन्द्रिय और अपर्याप्त संजी पंचेन्द्रिय, इन आठ जीवस्थानों में पहला मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही होता है अतः इनके एक २२ प्रकृतिक बंधस्थान होता है। वे २२ प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं—मिथ्याज्ञ, अनन्यानुबंधी कपाय चतुष्क आदि सोलह कपाय, तीन जडों से भरे कोई एक तैर, हाव्य-रति और शोक-अरति गुण में से कोई

तीन उदयस्थान हैं। वे इस प्रकार जानना चाहिये कि यद्यपि मिथ्या-दृष्टि गुणस्थान में अनन्तानुबंधी चतुष्क में से किसी एक के उदय के बिना ७ प्रकृतिक उदयस्थान भी होता है, परन्तु वह इन आठ जीव-स्थानों में नहीं पाया जाता है। क्योंकि जो जीव उपशमश्रेणि से च्युत होकर क्रमशः मिथ्यादृष्टि होता है उसी के मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में एक आवली काल तक मिथ्यात्व का उदय नहीं होता, परन्तु इन जीवस्थान वाले जीव तो उपशमश्रेणि पर चढ़ते ही नहीं हैं, अतः इनको सात प्रकृतिक उदयस्थान संभव नहीं है।

उक्त आठ जीवस्थानों में नपुंसकवेद, मिथ्यात्व, कपाय चतुष्क और दो युगलों में से कोई एक युगल, इस तरह आठ प्रकृतिक उदय-स्थान होता है। इस उदयस्थान में आठ भंग होते हैं, क्योंकि इन जीवस्थानों में एक नपुंसकवेद का ही उदय होता है, पुरुषवेद और स्त्रीवेद का नहीं, अतः यहाँ वेद का विकल्प तो संभव नहीं किन्तु यहाँ विकल्प वाली प्रकृतियाँ क्रोध आदि चार कपाय और दो युगल हैं, सो उनके विकल्प से आठ भंग होते हैं।

इस आठ प्रकृतिक उदयस्थान में भय और जुगुप्सा को विकल्प से मिलाने पर नौ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ एक-एक विकल्प के आठ-आठ भंग होते हैं अतः आठ को दो से गुणित करने पर सोलह भंग होते हैं। अर्थात् नौ प्रकृतिक उदयस्थान के सोलह भंग हैं। आठ प्रकृतिक उदयस्थान में भय और जुगुप्सा को युगपत् मिलाने से दस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यह एक ही प्रकार का है, अतः पूर्वोक्त आठ भंग ही होते हैं। इस प्रकार तीनों उदयस्थानों के कुल ३२ भंग हुए, जो प्रत्येक जीवस्थान में अलग-अलग प्राप्त होते हैं।

प्रयोग चार, एकेन्द्रिय आदि पांच जीवस्थानों में भी प्रयोग में आये हुए उदयस्थान हैं—मान, आठ, नौ और दस प्रकृतिक। मो

तीन उदयस्थान हैं। वे इस प्रकार जानना चाहिये कि यद्यपि मिथ्या-दृष्टि गुणस्थान में अनन्तानुबन्धी चतुष्क में से किसी एक के उदय के बिना ७ प्रकृतिक उदयस्थान भी होता है, परन्तु वह इन आठ जीव-स्थानों में नहीं पाया जाता है। क्योंकि जो जीव उपशमश्रेणि से च्युत होकर क्रमशः मिथ्यादृष्टि होता है उसी के मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में एक आवली काल तक मिथ्यात्व का उदय नहीं होता, परन्तु इन जीवस्थान वाले जीव तो उपशमश्रेणि पर चढ़ते ही नहीं हैं, अतः इनको सात प्रकृतिक उदयस्थान संभव नहीं है।

उक्त आठ जीवस्थानों में नपुंसकवेद, मिथ्यात्व, कपाय चतुष्क और दो युगलों में से कोई एक युगल, इस तरह आठ प्रकृतिक उदय-स्थान होता है। इस उदयस्थान में आठ भंग होते हैं, क्योंकि इन जीवस्थानों में एक नपुंसकवेद का ही उदय होता है, पुरुषवेद और स्त्रीवेद का नहीं, अतः यहाँ वेद का विकल्प तो संभव नहीं किन्तु यहाँ विकल्प वाली प्रकृतियाँ क्रोध आदि चार कपाय और दो युगल हैं, सो उनके विकल्प से आठ भंग होते हैं।

इस आठ प्रकृतिक उदयस्थान में भय और जुगुप्सा को विकल्प से मिलाने पर नौ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ एक-एक विकल्प के आठ-आठ भंग होते हैं अतः आठ को दो से गुणित करने पर सोलह भंग होने हैं। अर्थात् नौ प्रकृतिक उदयस्थान के सोलह भंग हैं। आठ प्रकृतिक उदयस्थान में भय और जुगुप्सा को युगपत् मिलाने से दस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यह एक ही प्रकार का है, अतः पूर्वोक्त आठ भंग ही होते हैं। दस प्रकार तीनों उदयस्थानों के कुल ३२ भंग हुए, जो प्रत्येक जीवस्थान में अलग-अलग प्राप्त होते हैं।

पशोः पाच एकेन्द्रिय आदि पाँच जीवस्थानों में से प्रत्येक में एक-एक उदयस्थान है—मातृ, आठ, नौ और दस प्रकृतिक। सो

जीवस्थानों में मोहनीय कर्म के बंधादि स्थानों व संवेध भंगों को बतलाने के बाद अब नामकर्म के भंगों को बतलाते हैं—

पण दुग पणगं पण चउ पणगं पणगा हवंति तिन्नेव ।

पण छप्पणगं छच्छप्पणगं अट्ठट्ठ दसगं ति ॥३७॥

सत्तेव अपज्जत्ता सामी तह सुहुम वायरा चेव ।

विगलिंदिया उ तिन्नि उ तह य असन्नी य सन्नी य ॥३८॥

शब्दार्थ—पण दुग पणगं—पांच, दो, पांच, पण चउ पणगं—पांच, चार, पांच, पणगा—पांच-पांच, हवंति—होते हैं, तिन्नेव—तीनों ही (बंध, उदय और सत्तास्थान), पण छप्पणगं—पांच, छह, पांच, छच्छप्पणगं—छह, छह, पांच, अट्ठट्ठ—आठ, आठ, दसगं—दस, ति—इस प्रकार ।

सत्तेव—सातों ही, अपज्जत्ता—अपर्याप्त, सामी—स्वामी, तह—तथा, सुहुम—सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, वायरा—वाटर एकेन्द्रिय पर्याप्त, चेव—और, विगलिंदिया—विकलेन्द्रिय पर्याप्त, तिन्नि—तीन, तह—वैसे ही, य—और, असन्नी—अमंजी पंचेन्द्रिय पर्याप्त, सन्नी—मंजी पंचेन्द्रिय पर्याप्त ।

गाथायं—पांच, दो, पांच; पांच, चार, पांच; पांच, पांच, पांच पांच, छह, पांच; छह, छह, पांच और आठ, आठ, दस; ये बंध उदय और सत्तास्थान हैं ।

उनके काम से सातों अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, वाटर एकेन्द्रिय पर्याप्त, विकलेन्द्रिय पर्याप्त, अमंजी पंचेन्द्रिय पर्याप्त और मंजी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव स्वामी जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—इन दो गाथाओं में जीवस्थानों में नामकर्म के भंगों का विचार किया गया है । पहली गाथा में तीन-तीन संस्थाओं का पूंज किया गया है, जिससे ये पहली संस्था बंधस्थान थी, दूसरी

चउ पणगं' और 'सुहुमं' पद का सम्बन्ध करते हैं। जिसका अर्थ यह है कि सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान में पाँच बंधस्थान हैं, चा उदयस्थान हैं और पाँच सत्तास्थान हैं। जिनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव भी मरकर मनुष्य और तिर्यचगण में ही उत्पन्न होता है, जिससे उसके उन गतियों के योग्य कर्मों का बंध होता है। इसीलिए इसके भी २३, २५, २६, २९ और ३० प्रकृतिक ये पाँच बंधस्थान माने गये हैं। इन पाँच बंधस्थानों के मानने के कारणों को पूर्व में स्पष्ट किया जा चुका है। यहाँ भी इन पाँच स्थानों के कुल भंग १३६१७ होते हैं।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवों के २१, २४, २५ और २६ प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान होते हैं। क्योंकि इन सूक्ष्म जीवों के आतप और उद्योत नामकर्म का उदय नहीं होता है। इसीलिये २७ प्रकृतिक उदयस्थान छोड़ दिया गया है।

२१ प्रकृतिक उदयस्थान में वे ही प्रकृतियाँ लेनी चाहिये, जो सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों को बतला आये हैं। लेकिन इतनी विशेषता है कि यहाँ सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान विवक्षित होने से अपर्याप्त के स्थान पर पर्याप्त का उदय कहना चाहिये। यह २१ प्रकृतिक उदयस्थान, अपान्तराल गति में होता है। प्रतिपक्षी प्रकृतियाँ न होने से इसमें एक ही भंग होता है।

उक्त २१ प्रकृतिक उदयस्थान में औदारिक शरीर, हुंड-मंडान, उपधान तथा साधारण और प्रत्येक में से कोई एक प्रकृति, इन चार प्रकृतियों को मिलाते तथा नियंत्रणपूर्वक को कम करने पर २४ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यह उदयस्थान शरीरस्थ जीव को होता है। यह प्रत्येक और साधारण के विकल्प में दो भंग होते हैं।

अपान्तराल गति पर्याप्त से पर्याप्त हुए जीव की अपेक्षा २४ प्रकृति



पर्याप्त हुए जीव को होता है। यहाँ भी २४ प्रकृतिक उदयस्थान की तरह पाँच भङ्ग होते हैं।

यदि शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के आतप और उद्योत में से किसी एक का उदय हो जावे तो २५ प्रकृतिक उदयस्थान में आतप और उद्योत में से किसी एक को मिलाने पर २६ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। किन्तु आतप का उदय साधारण को नहीं होता है, अतः इस पक्ष में २६ प्रकृतिक उदयस्थान के यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति की अपेक्षा दो भंग होते हैं। लेकिन उद्योत का उदय साधारण और प्रत्येक, इनमें से किसी के भी होता है अतः इस पक्ष में साधारण और प्रत्येक तथा यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति, इनके विकल्प से चार भंग होते हैं। इस प्रकार २६ प्रकृतिक उदयस्थान के कुल $५ + २ + ४ = ११$ भंग हुए।

अनन्तर प्राणापान पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव की अपेक्षा उच्छ्वास सहित २६ प्रकृतिक उदयस्थान में आतप और उद्योत में से किसी एक प्रकृति के मिला देने पर २७ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी पहले के समान आतप के साथ दो भङ्ग और उद्योत के साथ चार भङ्ग, इस प्रकार कुल छह भङ्ग हुए।

इन पाँचों उदयस्थानों के भङ्ग जोड़ने पर वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान के कुल भङ्ग २६ होते हैं।

वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवों के ६२, ८८, ८६, ८० और ७८ प्रकृतिक, ये पाँच मन्त्रास्थान होते हैं। इस जीवस्थान में जो पाँचों उदयस्थानों के २६ भङ्ग बतलाये हैं, उनमें से इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान के दो भङ्ग, २४ प्रकृतिक उदयस्थान में वैक्रिय वादर वायुमायिक के एक भङ्ग को छोड़कर जैय चार भङ्ग तथा २५ और २६ प्रकृतिकों में प्रत्येक नाम और अयशःकीर्ति नाम के साथ प्राप्त होते

100

इस २६ प्रकृतिक उदयस्थान में शरीर पर्याप्ति से पर्याप्ति हुए जीव की अपेक्षा पराघात और अप्रशस्त विहायोगति, इन दो प्रकृतियों को मिलाने पर २८ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी पूर्ववत् दो भङ्ग होते हैं।

२८ प्रकृतिक उदयस्थान के अनन्तर २९ प्रकृतिक उदयस्थान का क्रम है। यह २९ प्रकृतिक उदयस्थान दो प्रकार से होता है—एक तो जिसने प्राणापान पर्याप्ति को प्राप्त कर लिया है, उसके उद्योत के बिना केवल उच्छ्वास का उदय होने पर और दूसरा शरीर पर्याप्ति की प्राप्ति होने के पश्चात् उद्योत का उदय होने पर।^१ इन दोनों में से प्रत्येक स्थान में पूर्वोक्त दो-दो भङ्ग प्राप्त होते हैं। इस प्रकार २९ प्रकृतिक उदयस्थान के कुल चार भङ्ग हुए।

इसी प्रकार ३० प्रकृतिक उदयस्थान भी दो प्रकार से प्राप्त होता है। एक तो जिसने भापा पर्याप्ति को प्राप्त कर लिया है, उसके उद्योत का उदय न होकर सुस्वर और दुःस्वर इन दो प्रकृतियों में से किसी एक का उदय होने पर होता है और दूसरा जिसने श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति को प्राप्त किया और अभी भापा पर्याप्ति की प्राप्ति नहीं हुई किन्तु इसी बीच में उसके उद्योत प्रकृति का उदय हो गया तो भी ३० प्रकृतिक उदयस्थान हो जाता है। इनमें से पहले प्रकार के ३० प्रकृतिक उदयस्थान में यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति तथा सुस्वर और दुःस्वर के विकल्प से चार भङ्ग प्राप्त होते हैं। किन्तु दूसरे प्रकार के ३० प्रकृतिक उदयस्थान में यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति के विकल्प से दो ही भङ्ग होते हैं। इस प्रकार ३० प्रकृतिक उदयस्थान में छह भङ्ग प्राप्त हुए।

१ यत् प्राणापानपर्याप्त्या पर्याप्तश्चोच्छ्वासे शिथिल एकोनविंशत्, अपर्याप्तौ च मूर्च्छा, अथवा नष्टाभेदाद्विंशति उच्छ्वासेऽनुदितो उद्योतस्तत्र द्वौ भङ्गोऽनित्यम्।
—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ. २०३

अब क्रमप्राप्त असंज्ञी पर्याप्त जीवस्थान में बंधादि स्थानों और उनके भङ्गों का निर्देश करते हैं। इसके लिये गाथाओं में निर्देश किया है—‘छच्छप्पणंगं’ ‘असंज्ञी य’ अर्थात् असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान के छह बंधस्थान हैं, छह उदयस्थान हैं और पांच सत्तास्थान हैं। जिनका विवेचन यह है कि असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव मनुष्यगति और तिर्यचगति के योग्य प्रकृतियों का बंध करते ही हैं, किन्तु नरकगति और देवगति के योग्य प्रकृतियों का भी बंध कर सकते हैं। इसलिये इनके २३, २५, २६, २८, २९ और ३० प्रकृतिक ये छह बंधस्थान होते हैं और तदनुसार १३९२६ भङ्ग होते हैं।

उदयस्थानों की अपेक्षा विचार करने पर यहाँ २१, २६, २८, २९ और ३१ प्रकृतिक, ये छह उदयस्थान हैं। इनमें से २१ प्रकृतिक स्थान में तैजस, कामण, अगुरुलघु, स्थिर, अस्थिर, शुभ, वर्णचतुष्क, निर्माण, तिर्यचगति, तिर्यचानुपूर्वी, पंचेन्द्रिय जाति, वादर, पर्याप्त, सुभग और दुर्भग में से कोई एक, आदेय अनादेय में से कोई एक तथा यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति में से इन २१ प्रकृतियों का उदय होता है। यह २१ प्रकृतिक उदयस अपान्तरालगति में ही पाया जाता है तथा सुभग आदि तीन युगल से प्रत्येक प्रकृति के विकल्प से ८ भङ्ग प्राप्त होते हैं।

अनन्तर जब यह जीव शरीर को ग्रहण कर लेता है तब औदारि शरीर, औदारिक अंगोपांग, छह संस्थानों में से कोई एक संस्था छह संहननों में से कोई एक संहनन, उपघात और प्रत्येक इन १ प्रकृतियों का उदय होता है। किन्तु यहाँ आनुपूर्वी नामक उदय नहीं होता है। अतएव उक्त २१ प्रकृतिक उदयस्थान में प्रकृतियों को गिनाने और तिर्यचानुपूर्वी को कम करने पर उदयस्थान होता है। यहाँ छह संस्थान और छह संहनन

यहाँ कुल भंग ११५२ होते हैं। इस प्रकार असंजी पंचेन्द्रिय पर्याप्त ज स्थान के सब उदयस्थानों के कुल ४६०४ भङ्ग होते हैं।

असंजी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान में ६२, ८८, ८६, ८० और प्रकृतिक ये पाँच सत्तास्थान होते हैं। इनमें से २१ प्रकृतिक उदयस्थ के ८ भङ्ग तथा २६ प्रकृतिक उदयस्थान के २८८ भङ्ग; इनमें से प्र भङ्ग में पूर्वोक्त पाँच-पाँच सत्तास्थान होते हैं। क्योंकि ७८ प्रकृ की सत्ता वाले जो अग्निकायिक और वायुकायिक जीव हैं वे स असंजी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकों में उत्पन्न होते हैं तो उनके २१ और प्रकृतिक उदयस्थान रहते हुए ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान पाया जा संभव है। किन्तु इनके अतिरिक्त शेष उदयस्थानों और उनके भ में ७८ के बिना शेष चार-चार सत्तास्थान ही होते हैं।

इस प्रकार से अभी तक तेरह जीवस्थानों के नामकर्म के बंधा स्थानों और उनके भङ्गों का विचार किया गया। अब शेष र चौदहवें संजी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान के बंधादि स्थानों व भङ्ग का निर्देश करते हैं। इस जीवस्थान के बंधादि स्थानों के लिये गाय में संकेत किया गया है—'अदृष्टदसगं ति सन्नी य' अर्थात् संजी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान में आठ बंधस्थान, आठ उदयस्थान और दस सत्तास्थान हैं। जिनका स्पष्टीकरण नीचे किया जाता है।

नाम कर्म के २३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१ और १ प्रकृतिक, ये आठ बंधस्थान बतलाये हैं। ये आठों बंधस्थान संजी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवों के होते हैं और उनके १३६४५ भङ्ग संभव हैं। क्योंकि इनके नारों गति सम्बन्धी प्रकृतियों का बंध सम्भव है, इसीलिये २३ प्रकृति आदि बंधस्थान इनके कहे हैं। तीर्थकर नाम और आहारक नृपा का भी इनके बंध होता है इसीलिये ३१ प्रकृतिक बंधस्थान कहा है। आठों बंधस्थान में उद्यम और क्षयक दोनों श्रेणियाँ पाई जाती हैं क्योंकि १ प्रकृतिक बंधस्थान भी कहा है।

इस प्रकार चौदह जीवस्थानों में बंधादि स्थानों और उनके भंगों का विचार किया गया। अब उनके परस्पर संवेध का विचार करते हैं।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों के २३ प्रकृतिक बंधस्थान में २१ प्रकृतिक उदयस्थान के रहते ६२, ८८, ८६, ८० और ७८ प्रकृतिक, ये पांच सत्तास्थान होते हैं। इसी प्रकार २४ प्रकृतिक उदयस्थान में भी पांच सत्तास्थान होते हैं। कुल मिलाकर दोनों उदयस्थानों के १० सत्तास्थान हुए। इसी प्रकार २५, २६, २६ और ३० प्रकृतियों का बंध करने वाले उक्त जीवों के दो-दो उदयस्थानों की अपेक्षा दस-दस सत्तास्थान होते हैं। जो कुल मिलाकर ५० हुए। इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त आदि अन्य छह अपर्याप्तों के ५०-५० सत्तास्थान जानना किन्तु सर्वत्र अपने-अपने दो-दो उदयस्थान कहना चाहिये।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त के २३, २५, २६, २६ और ३० प्रकृतिक, ये पांच बंधस्थान होते हैं और एक-एक बंधस्थान में २१, २४, २५ और २६ प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान होते हैं। अतः पांच को चार से गुणित करने पर २० हुए तथा प्रत्येक उदयस्थान में पांच-पांच सत्तास्थान होते हैं अतः २० को ५ से गुणा करने पर १०० सत्तास्थान सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान में होते हैं।

बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त के भी पूर्वोक्त २३, २५, २६, २६ और ३० प्रकृतिक, पांच बंधस्थान होते हैं और एक-एक बंधस्थान में २१, २४, २५, २६ और २७ प्रकृतिक, ये पांच-पांच उदयस्थान होते हैं, अतः ५ को ५ से गुणा करने पर २५ हुए। इनमें से अन्तिम पांच उदयस्थानों में ७८ के बिना चार-चार सत्तास्थान होते हैं, जिनके कुल भंग २० हुए और बादर २० उदयस्थानों में पांच-पांच सत्तास्थान होते हैं, जिनके कुल भंग १०० हुए। इस प्रकार यहाँ कुल भंग १२० होते हैं।

द्वैन्द्रिय पर्याप्त के २३, २५, २६, २७ और ३० प्रकृतिक, ये पांच

चाहिये । २५ प्रकृतिक बंधस्थान में २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक, ये आठ उदयस्थान बतलाये हैं सो इनमें से २१ और २६ प्रकृतिक उदयस्थानों में तो पाँच-पाँच सत्तास्थान होते हैं तथा २५ और २७ प्रकृतिक उदयस्थान देवों के ही होते हैं, अतः इनमें ६२ और ८८ प्रकृतिक, ये दो-दो सत्तास्थान होते हैं । शेष रहे चार उदयस्थानों में से प्रत्येक में ७८ प्रकृतिक के बिना चार-चार सत्तास्थान होते हैं । इस प्रकार यहाँ कुल ३० सत्तास्थान होते हैं । २६ प्रकृतिक बंधस्थान में भी इसी प्रकार ३० सत्तास्थान होते हैं ।

२८ प्रकृतिक बंधस्थान में आठ उदयस्थान होते हैं । इनमें से २५, २६, २७, २८ और २९ प्रकृतिक इन छह उदयस्थानों में ६२ और ८८ प्रकृतिक, ये दो-दो सत्तास्थान होते हैं । ३० प्रकृतिक उदयस्थान में ६२, ८८, ८९ और ९० प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान होते हैं तथा ३१ प्रकृतिक उदयस्थान में ६२, ८८ और ८९ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं । इस प्रकार यहाँ कुल १६ सत्तास्थान होते हैं ।

२९ प्रकृतिक बंधस्थान में ३० प्रकृतिक सत्तास्थान तो २५ प्रकृतिक का बंध करने वाले के समान जानना किन्तु यहाँ कुछ विशेषण है कि जब अविरत सम्यग्दृष्टि मनुष्य देवगति के योग्य २९ प्रकृतिक का बंध करता है तब उसके २१, २६, २८, २९ और ३० प्रकृतिक पाँच उदयस्थान तथा प्रत्येक उदयस्थान में ६३ और ८९ प्रकृतिक, दो सत्तास्थान होते हैं जिनका जोड़ १० हुआ ।

दूसी प्रकार विक्रिया करने वाले संयत और संयतासंयत जीवों में भी २९ प्रकृतिक बंधस्थान के समय २५ और २७ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान तथा प्रत्येक उदयस्थान में ६३ और ८९ प्रकृतिक ये दो उदयस्थान होते हैं । जिनका जोड़ ४ होता है अथवा आहारक संयत में इन दो उदयस्थानों में ६३ प्रकृतियों की सत्ता होती है और तीर्थंकर गंगा बाने मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा ८९ की सत्ता होती है ।

दो सत्तास्थान जानना चाहिए । २१ तथा २७ प्रकृतिक उदयस्थान में ८० और ७६ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होते हैं । २६ प्रकृतिक उदयस्थान में ८०, ७६, ७६ और ७५ प्रकृतिक ये चार सत्तास्थान होते हैं । क्योंकि २६ प्रकृतिक उदयस्थान तीर्थकर और सामान्य केवली दोनों को प्राप्त होता है । उनमें से यदि तीर्थकर को २६ प्रकृतिक उदयस्थान होगा तो ८० और ७६ प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान होंगे और यदि सामान्य केवली के २६ प्रकृतिक उदयस्थान होगा तो ७६ और ७५ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होंगे । इसी प्रकार ३० प्रकृतिक उदयस्थान में भी चार सत्तास्थान प्राप्त होते हैं । ३१ प्रकृतिक उदयस्थान में ८० और ७६ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होते हैं, क्योंकि यह उदयस्थान तीर्थकर केवली के ही होता है । ६ प्रकृतिक उदयस्थान में ८०, ७६ और ६ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं । इनमें से प्रारम्भ के दो सत्तास्थान तीर्थकर के अयोगिकेवली गुणस्थान के उपान्त्य समय तक होता है और अन्तिम ६ प्रकृतिक सत्तास्थान अयोगिकेवली गुणस्थान के अंत समय में होता है । ८ प्रकृतिक उदयस्थान में ७६, ७५ और ८ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं । इनमें से आदि के दो सत्तास्थान (७६, ७५) सामान्य केवली के अयोगिकेवली गुणस्थान के उपान्त्य समय तक प्राप्त होते हैं और अन्तिम ८ प्रकृतिक सत्तास्थान अन्तिम समय में प्राप्त होता है । इस प्रकार ये २६ सत्तास्थान होते हैं ।

अब यदि इन्हें पूर्वोक्त २०८ सत्तास्थानों में शामिल कर दिया जाये तो सभी पंचेन्द्रिय पर्यान्ति जीवस्थान में कुल २३४ सत्तास्थान होने हैं ।

जीवस्थान पर्यान्ति में नामकर्म के बंधस्थानों, उदयस्थानों और ग नीचे निम्न अनुसार है । पहले बंधस्थानों और

६ चतुरिन्द्रिय अप०		१० चतु० पर्याप्त		११ असं० पंचे० अप०		१२ असं० पं० पर्याप्त	
२३	४	२३	४	२३	४	२३	४
२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५
२६	१६	२६	१६	२६	१६	२६	१६
२८	६२४०	२८	६२४०	२८	६२४०	२८	६
३०	४६३२	३०	४६३२	३०	४६३२	२८	६२४०
						३०	४६३२
५	१३६१७	५	१३६१७	५	१३६१७	६	१३६२६

१३ संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त		१४ संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त	
२३	४	२३	४
२५	२५	२५	२५
२६	१६	२६	१६
२८	६२४०	२८	६
३०	४६३२	२८	६२४०
		३०	४६४१
		३१	१
		१	१
५	१३६१७	८	१३६४५

1

६ चतुरि० अप०		१० चतुरि० पर्याप्त		११ असं० पंचे० अप०		१२ असं० पंचे० पर्याप्त	
२१	१	२१	२	२१	२	२१	८
२६	१	२६	२	२६	२	२६	२८८
		२८	२	असंज्ञी मनुष्य १		२८	५७६
		२९	४			२९	११५२
		३०	६			३०	१७२८
		३१	४			३१	११५२
२	२	३	२०	२	६	६	४६०४

१३ संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त		१४ संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त	
२१	२	२१	२५
२६	२	२५	२६
		२६	५७६
		२७	२६
		२८	११६६
		२९	१७७२
		३०	२८८८
		३१	११५२
		३०	१
		६	१
		८	१
		०	५
	४	११	७३४८

इस प्रकार से जीवस्थानों में आठ कर्मों की उत्तर प्रकृतियों के बंध, उदय व सत्ता स्थान तथा उनके भंगों का कथन करने के बाद अब गुणस्थानों में भंगों का कथन करते हैं।

गुणस्थानों में संवेध भंग

सर्वप्रथम गुणस्थानों में ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म के बंधादि स्थानों का कथन करते हैं—

नाणंतराय तिविहमवि दससु दो होंति दोसु ठाणसुं ।

शब्दार्थ—नाणंतराय—ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म, तिविह-
मवि—तीन प्रकार से (बंध, उदय और सत्ता की अपेक्षा), दससु—
आदि के दस गुणस्थानों में, दो—दो (उदय और सत्ता), होंति—
होता है, दोसु—दो (उपशांतमोह और क्षीणमोह में), ठाणसुं—
गुणस्थानों में।

भाष्य—प्रारम्भ के दस गुणस्थानों में ज्ञानावरण और
अन्तराय कर्म बन्ध, उदय और सत्ता की अपेक्षा तीन प्रकार
का है और दो गुणस्थानों (उपशांतमोह, क्षीणमोह) में उदय
और सत्ता की अपेक्षा दो प्रकार का है।

विशेषार्थ—पूर्व में चौदह जीवस्थानों में आठ कर्मों के बंध, उदय
और सत्ता स्थान तथा उनके संवेध भंगों का कथन किया गया। अब
गुणस्थानों में उनका कथन करते हैं।

ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म के बारे में यह नियम है कि ज्ञाना-
वरण की पाँचों और अन्तराय की पाँचों प्रकृतियों का वन्यविच्छेद
दमयें मुष्मसंवराय गुणस्थान के अन्त में तथा उदय और सत्ता का
विच्छेद दाग्ध्वं क्षीणमोह गुणस्थान के अन्त में होता है। अतएव दमयें
से जाना है कि पहले मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में केवल दमयें
यह दस गुणस्थानों में ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म के पाँच

...
...
...

...
...

उदय और नी प्रकृतिक सत्ता तथा छह प्रकृतिक बंध, पाँच प्रकृतिक उदय और नी प्रकृतिक सत्ता, ये दो भंग प्राप्त होते हैं। यद्यपि स्थानद्वित्रिक का उदय प्रमत्तसंयत गुणस्थान के अंतिम समय तक हो सकता है, फिर भी इससे पाँच प्रकृतिक उदयस्थान के कथन में कोई अंतर नहीं आता है, सिर्फ विकल्प रूप प्रकृतियों में ही अंतर पड़ता है। छठे गुणस्थान तक निद्रा आदि पाँचों प्रकृतियाँ विकल्प से प्राप्त होती हैं, आगे निद्रा और प्रचला ये दो प्रकृतियाँ ही विकल्प से प्राप्त होती हैं।

अपूर्वकरण गुणस्थान के प्रथम भाग में निद्रा और प्रचला की भी बंधव्युच्छिन्ति हो जाने से आगे सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान पर्यन्त तीन गुणस्थानों में बंध में चार प्रकृतियाँ रह जाती हैं, किन्तु उदय और सत्ता पूर्ववत् प्रकृतियों की रहती है। अतः अपूर्वकरण के दूसरे भाग से लेकर सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान तक तीन गुणस्थानों में चार प्रकृतिक बंध, चार प्रकृतिक उदय और नी प्रकृतिक सत्ता तथा चार प्रकृतिक बंध, पाँच प्रकृतिक उदय और नी प्रकृतिक सत्ता, यह दो भंग प्राप्त होते हैं—‘चउबंध तिगे चउ पण नवंस’।

लेकिन उक्त कथन उपशमश्रेणि की अपेक्षा समझना चाहिए क्योंकि ऐसा नियम है कि निद्रा या प्रचला का उदय उपशमश्रेणि ही होना है, क्षपकश्रेणि में नहीं होता है। अतः क्षपकश्रेणि में अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानों में पाँच प्रकृतिक उदय रूप भङ्ग प्राप्त नहीं होता है तथा अनिवृत्तिकरण के कुछ भागों के व्यतीत होने पर स्थानद्वित्रिक की सत्ता का क्षय हो जाता है। जिससे छह प्रकृतिक ही सत्ता रहती है। अतः अनिवृत्तिकरण के अंतिम संस्थापन और सूक्ष्मसंपराय इन दो क्षपक गुणस्थानों में चार प्रकृतिक बंध, चार प्रकृतिक उदय और छह प्रकृतिक सत्ता, यह एक भङ्ग प्राप्त होता है—‘हुगु जुयन दग्गंगा’।

का दूसरा भङ्ग प्राप्त होता है। इस प्रकार क्षीणमोह गुणस्थान में भी दो भंग प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार से ज्ञानावरण, अंतराय और दर्शनावरण कर्म की उत्तर प्रकृतियों के गुणस्थानों में बंध, उदय और सत्ता स्थानों को वतलाने के बाद अब वेदनीय, आयु और गोत्र कर्मों के भंगों को वतलाते हैं।

वेयणियाउयगोए विभज्ज मोहं परं वोच्छं ॥४१॥

शब्दार्थ—वेयणियाउयगोए—वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म के, विभज्ज—विभाग करके, मोहं—मोहनीय कर्म के, परं—इसके बाद, वोच्छं—कहेगे।

गाथार्थ—वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म के भंगों का कथन करने के बाद मोहनीय कर्म के भंगों का कथन करेंगे।

विशेषार्थ—गाथा में वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म के भंगों के विभाग करने की सूचना दी है किन्तु उनके कितने-कितने भंग होते हैं यह नहीं वतलाया है। अतः आचार्य मलयगिरि की टीका में भाष्य की गाथाओं के आधार पर वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म के जो भंग-विकल्प वतलाये हैं, उनको यहाँ स्पष्ट करते हैं।

भाष्य की गाथा में वेदनीय और गोत्र कर्म के भङ्गों का निर्देश इन प्रकार किया गया है—

चउ एस्सु दोण्णि सत्तसु एगे चउ गुणिसु वेयणियभंगा ।

गोए पण चउ दो णिसु एगद्धसु दोण्णि एक्कम्मि ॥

अर्थात् वेदनीय कर्म के छह गुणस्थानों में चार, सात में दो और एक में चार भङ्ग होते हैं तथा गोत्रकर्म के पहले में पाँच, दूसरे में चार तीसरे आदि तीन में दो, छठे आदि आठ में एक और एक में दो भङ्ग हैं जिसका स्पष्टीकरण नीचे किया जाता है।

स्थानों के विकल्पों को बतलाने के बाद अब चौदहवें गुणस्थान के भङ्गों को बतलाने के लिये कहते हैं कि 'एगे चउ' अर्थात् एक गुणस्थान—चौदहवें अयोगिकेवली गुणस्थान में चार भङ्ग होते हैं। क्योंकि अयोगिकेवली गुणस्थान में साता वेदनीय का भी बंध नहीं होता है, अतः वहाँ बंध की अपेक्षा तो कोई भङ्ग प्राप्त नहीं होता है किन्तु उदय और सत्ता की अपेक्षा भङ्ग बनते हैं। फिर भी जिसके इस गुणस्थान में असाता का उदय है, उसके उपान्त्य समय में साता की सत्ता का नाश हो जाने से तथा जिसके साता का उदय है उसके उपान्त्य समय में असाता की सत्ता का नाश हो जाने से उपान्त्य समय तक—१. साता का उदय और साता-असाता की सत्ता, २. असाता का उदय और साता-असाता की सत्ता, ये दो भङ्ग प्राप्त होते हैं। तथा अंतिम समय में, ३. साता का उदय और साता की सत्ता तथा ४. असाता का उदय और असाता की सत्ता, यह दो भङ्ग प्राप्त होते हैं।^१ इस प्रकार अयोगिकेवली गुणस्थान में वेदनीय कर्म के चार भंग बनते हैं।

अब गोत्रकर्म के भंगों को गुणस्थानों में बतलाते हैं।

गोत्रकर्म के बारे में भी वेदनीय कर्म की तरह एक विशेषता त यह है कि साता और असाता वेदनीय के समान उच्च और नीच गोत्र बंध और उदय की अपेक्षा प्रतिपक्षी प्रकृतियाँ हैं, एक काल में इन दोनों में ने किसी एक का बंध और एक का ही उदय हो सकता है, लेकिन

१. 'एकस्मिन्' अयोगिकेवलनि सत्वारो भंगा, ते चेमे—असातस्मोदयः सातामाते सती, अथवा सातस्मोदयः सातामाते सती, एतौ, द्वौ विकल्पाश्च गोत्रिकेवलनि द्विचरममये यावत्प्राप्येते, चरमसमये तु असातस्मोदयः असातमाते सत्य द्विचरम-नामये सातं क्षीणम्, यस्य त्वमातं द्विचरम-नामये सातमाते विकल्पः—सातस्मोदयः सातस्य सत्ता।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २०६

गुणस्थानों में एक उच्चगोत्र का ही बंध होता है। इसका यह अर्थ हुआ कि मिथ्यात्व गुणस्थान के समान सासादन गुणस्थान में भी किसी एक का बंध किसी एक का उदय और दोनों की सत्ता बन जाती है। इस हिसाब से यहाँ चार भंग पाये जाते हैं और वे चार भाग वही हैं जिनका मिथ्यात्व गुणस्थान के भंग १, २, २ और ४ में उल्लेख किया गया है।

‘दो तिसु’ अर्थात् तीसरे, चौथे, पांचवें—मिथ्य, अविरत सम्यग्दृष्टि और देशविरति गुणस्थानों में दो भंग होते हैं। क्योंकि तीसरे से लेकर पांचवें गुणस्थान तक बंध एक उच्च गोत्र का ही होता है किन्तु उच्च और सत्ता दोनों की पाई जाती है। इसलिये इन तीन गुणस्थानों में—
१. उच्च का बंध, उच्च का उदय और उच्च-नीच की सत्ता, तथा
२. उच्च का बंध, नीच का उदय और नीच-उच्च की सत्ता, यह दो भंग पाये जाते हैं। यहाँ कितने ही आचार्यों का यह भी अभिमत है कि पांचवें गुणस्थान में उच्च का बंध, उच्च का उदय और उच्च-नीच की सत्ता यही एक भंग होता है। इस विषय में आगम वचन है कि—

सामान्तेणं वयजार्हं उच्चागोयस्त उदओ होइ ।

अर्थात्—सामान्य से संयत और संयतासंयत जाति वाले जीव के उच्च गोत्र का उदय होता है।

‘एगइडुमु’—यानी छठे प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर आठवें गुणस्थानों में से प्रत्येक गुणस्थान में एक भंग प्राप्त होता है। क्योंकि छठे से लेकर दसवें मुश्मत्तंपराय गुणस्थान तक ही उच्च गोत्र का बंध होता है। अतः छठे, सातवें, आठवें, नौवें, दसवें—प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत, प्रपुर्वकरण, अनिवृत्ति वादर और मुश्मत्तंपराय—
----- में से प्रत्येक में—उच्च का बंध, उच्च का उदय और उच्च-

मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में आयुक्रम के २८ भंग होते हैं। क्योंकि चारों गतियों के जीव मिथ्यादृष्टि भी होते हैं और नारकों के पाँच तिर्यचों के नौ, मनुष्यों के नौ और देवों के पाँच, इस प्रकार आयुक्रम के २८ भंग पहले बतलाये गये हैं। अतः वे सब भंग मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में संभव होने से २८ भंग मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में कहे हैं।

सासादन गुणस्थान में २६ भंग होते हैं। क्योंकि नरकायु का वं मिथ्यात्व गुणस्थान में ही होने से सासादन सम्यग्दृष्टि तिर्यच और मनुष्य नरकायु का वंघ नहीं करते हैं। अतः उपर्युक्त २८ भंगों में से— १ भुज्यमान तिर्यचायु, वध्यमान नरकायु और तिर्यच-नरकायु की सत्ता, तथा भुज्यमान मनुष्यायु वध्यमान नरकायु और मनुष्य-नरकायु की सत्ता, ये दो भंग कम होने जाने से सासादन गुणस्थान में २६ भंग प्राप्त होते हैं।^१

तीसरे मिश्र गुणस्थान में परभव संबंधी आयु के वंघ न होने के नियम होने से परभव संबंधी किसी भी आयु का वंघ नहीं होता है। अतः पूर्वोक्त २८ भंगों में से वंघकाल में प्राप्त होने वाले नारकों के दो, तिर्यचों के चार, मनुष्यों के चार और देवों के दो, इस प्रकार $२+४+४+२=१२$ भंगों को कम कर देने पर १६ भंग प्राप्त होते हैं।

चौथे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में २० भंग होते हैं। क्योंकि अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में तिर्यचों और मनुष्यों में से प्रत्येक के नारक, तिर्यच और मनुष्य आयु का वंघ नहीं होने से तीन-तीन भंग

१ यद्यपि तिर्यचों मनुष्या या सासादनमाने धर्मेमाना नरकायु वध्यति, तथा यथा न परमयायुर्वंघकाले एकैको भंगो न प्राप्यते



आयुर्कर्म का बन्ध सातवें गुणस्थान तक ही होता है। आगे आठवें अपूर्वकरण आदि शेष गुणस्थानों में नहीं होता है। किन्तु एक विशेषतः है कि जिसने देवायु का बन्ध कर लिया, ऐसा मनुष्य उपशमश्रेणि पर आरोहण कर सकता है और जिसने देवायु को छोड़कर अन्य आयु का बन्ध किया है, वह, उपशमश्रेणि पर आरोहण नहीं करता है—

तिसु आउगेसु बद्धेसु जेण सेढि न आरुहइ ।^१

तीन आयु का बन्ध करने वाला (देवायु को छोड़कर) जीव श्रेणि पर आरोहण नहीं करता है। अतः उपशमश्रेणि की अपेक्षा अपूर्वकरण आदि उपशांतमोह गुणस्थान पर्यन्त आठ, नौ, दस और ग्यारह, इन चार गुणस्थानों में दो-दो भङ्ग प्राप्त होते हैं—‘दो चउसु’। वे दो भङ्ग इस प्रकार हैं— १ मनुष्यायु का उदय, मनुष्यायु की सत्ता, २ मनुष्यायु का उदय मनुष्य-देवायु की सत्ता। इनमें से पहला भङ्ग परभव संबंधी आयु बन्धकाल के पूर्व में होता और दूसरा भङ्ग उपरत बन्धकाल में होता है।

लेकिन क्षणिकश्रेणि की अपेक्षा अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानों में मनुष्यायु का उदय और मनुष्यायु की सत्ता, यही एक भङ्ग होता है।

क्षीणमोह, सयोगिकेवली, अयोगिकेवली इन तीन गुणस्थानों में भी मनुष्यायु का उदय और मनुष्यायु की सत्ता, यही एक भङ्ग होता है— ‘तीगु एक्क’।

उस प्रकार प्रत्येक गुणस्थान में आयुर्कर्म के सम्भव भङ्गों का विस्तार किया गया कि प्रत्येक गुणस्थान में कितने-कितने भङ्ग होते हैं।

१४ गुणस्थानों में ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, आयु, मोह और अत्राय, इन छह कर्मों का विवरण उस प्रकार है—

8"

8"

8"

8"

8"

8"

8"

8"

8"

8"

8"

8"

8"

8"

8"

8"

8"

8"

8"

8"

8"

8"

8"

8"

शब्दार्थ—गुणठाणोसु—गुणस्थानों में, अट्ठसु—आठ में, एक्केक्कं—एक-एक, मोहबंधठाणोसु—मोहनीय कर्म के बंधस्थानों में से, पंच—पाँच, अनियट्ठिठाणे—अनिवृत्तिवादर गुणस्थान में, बंधोवरमो—बंध का अभाव है, परं—आगे, तत्तो—उससे (अनिवृत्तिवादर गुणस्थान से) ।

गाथार्थ—मिथ्यात्व आदि आठ गुणस्थानों में मोहनीय कर्म के बंधस्थानों में से एक, एक बंधस्थान होता है तथा अनिवृत्तिवादर गुणस्थान में पाँच और अनन्तर आगे के गुणस्थानों में बंध का अभाव है ।

विशेषार्थ—इस गाथा में मोहनीय कर्म के बंध, उदय और सत् स्थानों में से बंधस्थानों को बतलाया है । सामान्य से मोहनीय कर्म बंधस्थान पहले बताये जा चुके हैं, जो २२, २१, १७, १३, ९, ५, ४, २, १ प्रकृतिक हैं । इन दस स्थानों को गुणस्थानों में घटाते हैं ।

‘गुणठाणोसु अट्ठसु एक्केक्कं’ अर्थात् पहले मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर आठवें अपूर्वकरण गुणस्थान पर्यन्त प्रत्येक गुणस्थान मोहनीय कर्म का एक-एक बंधस्थान होता है । वह इस प्रकार जान चाहिए कि मिथ्यादृष्टि गुणस्थानों में एक २२ प्रकृतिक, सासाद गुणस्थान में २१ प्रकृतिक, मिश्र गुणस्थान और अविरत सम्यग्दर्श गुणस्थान में १७ प्रकृतिक, देशविरति में १३ प्रकृतिक तथा प्रमा मंयत, अप्रमत्तमंयत और अपूर्वकरण में ९ प्रकृतिक बंधस्थान होते हैं । इनके भंगों का विवरण मोहनीय कर्म के बंधस्थानों के प्रकार में कहे गये अनुसार जानना चाहिए, लेकिन यहाँ इतनी विवेचना कि अविरत और शोक का बंधविच्छेद प्रमत्तमंयत गुणस्थान में जाना है अतः अप्रमत्तमंयत और अपूर्वकरण गुणस्थान में नौ प्राप्ति में एक-एक ही भंग प्राप्ति होना है । पहले जो नौ प्राप्ति

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

सत्ताइ दसउ मिच्छे सासायणमीसए नवुक्कोसा ।
छाई नव उ अविरए देसे पंचाइ अट्टेव ॥४३॥
विरए खओवसमिए, चउराई सत्त छच्चपुव्वम्मि ।
अनियट्ठिबायरे पुण इक्को व दुवे व उदयंसा ॥४४॥
एगं सुहुमसरागो वेएइ अवेयगा भवे सेसा ।
भंगाणं च पमाणं पुव्वुट्ठिठेण नायव्वं ॥४५॥

शब्दार्थ—सत्ताइ दसउ—सात से लेकर दस प्रकृति तक,
मिच्छे—मिध्यात्व गुणस्थान में, सासायण मीसए—सासादन और
मिथ्र में, नवुक्कोसा—सात से लेकर नौ प्रकृति तक, छाईनवउ—
छह से लेकर नौ तक, अविरए—अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में,
देसे—देशविरति गुणस्थान में, पंचाइअट्टेव—पांच से लेकर आठ
प्रकृति तक,

विरए खओवसमिए—प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थान में, चउरा-
ईसत्त—चार से सात प्रकृति तक, छच्च—और छह तक, अपुव्वम्मि
—अपूर्वकरण गुणस्थान में, अनियट्ठिबायरे—अनिवृत्ति वादर गुण-
स्थान में, पुण—तथा, इक्को—एक, व—अथवा दुवे—दो, उदयंसा—
उदयस्थान ।

एगं—एक, सुहुमसरागो—सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान वाला,
वेएइ—वेदन करता है, अवेयगा—अवेदक, भवे—होते हैं, सेसा—
बाकी के गुणस्थान वाले, भंगाणं—गंगों का, च—और, पमाणं—
प्रमाण, पुव्वुट्ठिठेण—पहले कहे अनुसार, नायव्वं—जानना
चाहिए ।

(ग) पमणसरायादि चउतिपनिट्ठाण पणवट्ठमगसमादि चउ ।
दाणा द्यादि निय न प चउवीगमदा अपुव्वो ति ॥
पणवट्ठमगसरायादि पणवट्ठे होदि दोण्हमेवस ।
पणवट्ठमगसरायादि मेमेमेव हये दाणं ॥

यद्यपि गाथा ११ में मोहनीयकर्म के उदयस्थानों की सामान्य विवेचना के प्रसंग में विशेष स्पष्टीकरण किया जा चुका है, फिर भी गुणस्थानों की अपेक्षा उनका कथन करने के लिए गाथानुसार यहाँ विवेचन करते हैं।

‘सत्ताइ दसउ मिच्छे’ अर्थात् पहले मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में ७, ८, ९ और १० प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान होते हैं। मिथ्यात्व अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन, क्रोधादि में से अन्यतम तीन क्रोधादि, तीन वेदों में से कोई एक वेद, हास्य-रति युगल, शोक-अरति युगल में से कोई एक युगल, इन सात प्रकृतियों का ध्रुव रूप उदय होने से सात प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इन ध्रुवोदया सात प्रकृतियों में भय अथवा जुगुप्सा अथवा अनन्तानुबन्धी कपाय तत्त्व में से किसी एक कपाय को मिलाने पर आठ प्रकृतिक तथा उन सात प्रकृतियों में भय, जुगुप्सा अथवा भय, अनन्तानुबन्धी अथवा जुगुप्सा अनन्तानुबन्धी में से किन्हीं दो को मिलाने से नौ प्रकृतिक और उक्त सात प्रकृतियों में भय, जुगुप्सा और अनन्तानुबन्धी अन्यतम एक कपाय को एक साथ मिलाने पर दस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इन चार उदयस्थानों में सात की एक, आठ की तीन, नौ की तीन और दस की एक, इस प्रकार भगों की आठ चौबीसी प्राप्त होती हैं।

सामादन और मिश्र गुणस्थान में सात, आठ और नौ प्रकृतिक, तीन-तीन उदयस्थान होते हैं।

सामादन गुणस्थान में अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन क्रोधादि में से अन्यतम क्रोधादि कोई चार, तीन वेदों में कोई एक वेद, दो युगलों में से कोई एक युगल इन सात प्रकृतियों का ध्रुवोदय होने से सात प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इस स्थान में भय या जुगुप्सा में से किसी एक को मिलाने पर आठ प्रकृतिक तथा भय और जुगुप्सा को एक साथ मिलाने पर नौ प्रकृतिक उदयस्थान

छह प्रकृतिक उदयस्थान में भय, जुगुप्सा और वेदक सम्यक्त्व को एक साथ मिलाने पर भी नौ प्रकृतिक उदयस्थान होता है और विकल्प नहीं होने से भणों की एक चौबीसी प्राप्त होती है। चौथे गुणस्थान में कुल मिलाकर आठ चौबीसी होती हैं।

‘देसे पंचाइ अट्टेव’—देशविरत गुणस्थान में पाँच से लेकर आठ प्रकृति पर्यन्त चार उदयस्थान हैं—पाँच, छह, सात और आठ प्रकृतिक। पाँच प्रकृतिक उदयस्थान में पाँच प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं—प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन क्रोधादि में से अन्यतम दो क्रोधादि, तीन वेदों में से कोई एक वेद, दो युगलों में से कोई एक युगल। भणों की एक चौबीसी होती है। छह प्रकृतिक उदयस्थान उक्त पाँच प्रकृतियों में भय या जुगुप्सा या वेदक सम्यक्त्व में से किसी एक मिलाने से बनता है। इस स्थान में प्रकृतियों के तीन विकल्प होने तीन चौबीसी होती हैं। सात प्रकृतिक उदयस्थान के लिये पाँच प्रकृतियों के साथ भय, जुगुप्सा या भय, वेदक सम्यक्त्व या जुगुप्सा वेदक सम्यक्त्व को एक साथ मिलाया जाता है। यहाँ भी तीन विकल्पों के कारण भणों की तीन चौबीसी जानना चाहिये। पूर्वोक्त पाँच प्रकृतियों के साथ भय, जुगुप्सा और वेदक सम्यक्त्व को युगपत् मिलाने से आठ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। प्रकृतियों का विकल्प न होने से भणों की एक चौबीसी होती है।

पाँचवें देशविरत गुणस्थान के अनन्तर छठे, सातवें प्रमत्तविरत और अप्रमत्तविरत गुणस्थानों का संकेत करने के लिये गायाने ‘विग्गं गओवगमिण्’ पद दिया है—जिमका अर्थ क्षायोपशमिक विग्गं होता है। क्योंकि क्षायोपशमिक विग्गं, यह मंजा इन दो गुणस्थानों की ही होती है। उसके आगे के गुणस्थानों के जीवों को या तो उपसमह मंजा दी जाती है या क्षपक। उपसमहश्रेणि चढ़ने वाले को उपसमह मंजा दी जाती है। क्षपक चढ़ने वाले को क्षपक कहते हैं। अतः

उदयस्थान जानना चाहिये तथा भंगों की एक चौबीसी होती है। इस प्रकार आठवें गुणस्थान में भंगों की चार चौबीसी होती हैं।

‘अनियद्विवायरे पुण इक्को वा दुवे व’—अर्थात् नौवें अनिवृत्ति-वादर गुणस्थान में दो उदयस्थान हैं—दो प्रकृतिक और एक प्रकृतिक। यहाँ दो प्रकृतिक उदयस्थान में संज्वलन कपाय चतुष्क में से किसी एक कपाय और तीन वेदों में से किसी एक वेद का उ होता है। यहाँ तीन वेदों से संज्वलन कपाय चतुष्क को गुणित कर पर १२ भंग प्राप्त होते हैं। अनन्तर वेद का विच्छेद हो जाने पर एक प्रकृतिक उदयस्थान होता है, जो चार, तीन, दो और एक प्रकृतिक वंध के समय होता है। अर्थात् सवेद भाग तक दो प्रकृतिक और अवेद भाग में एक प्रकृतिक उदयस्थान समझना चाहिये। यद्यपि एक प्रकृतिक उदय में चार प्रकृतिक वंध की अपेक्षा चार, तीन प्रकृतिक वंध की अपेक्षा तीन, दो प्रकृतिक वंध की अपेक्षा दो, और एक प्रकृतिक वंध की अपेक्षा एक, इस प्रकार कुल दस भंग बतलाये हैं किन्तु यहाँ वंधस्थानों के भेद की अपेक्षा न करके सामान्य से कुल चार भंग विवक्षित हैं।

दसवें सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान में एक सूक्ष्म लोभ का उदय होने से वहाँ एक ही भंग होता है—‘एगं सुहुमसरागो वेएइ’। इस प्रकार एक प्रकृतिक उदयस्थान में कुल पाँच भंग जानना चाहिये।

दसवें गुणस्थान के बाद आगे के उपशान्तमोह आदि गुणस्थानों में मोहनीयकर्म का उदय न होने से उन गुणस्थानों में उदय अपेक्षा एक भी भंग नहीं होता है।

इस प्रकार यहाँ गाथाओं के निर्देशानुसार गुणस्थानों में मोहनीयकर्म के उदयस्थानों और उनके भंगों का कथन किया गया है और अंत में जो भंगों का प्रमाण पूर्वोद्दिष्ट क्रम से जानने का

गुणस्थानों में योग आदि की अपेक्षा उदयविकल्पों और पदवृन्दों की संख्या जानने के सम्बन्ध में सामान्य नियम यह है कि जिस गुणस्थान में योगादिक की जितनी संख्या है उसमें उस गुणस्थान के उदयविकल्प और पदवृन्दों को गुणित कर देने पर योगादि की अपेक्षा प्रत्येक गुणस्थान में उदयविकल्प और पदवृन्द की संख्या ज्ञात हो जाती है। अतः यह जानना जरूरी है कि किस गुणस्थान कितने योग आदि हैं। परन्तु इनका एक साथ कथन करना अशक्य होने से क्रमशः योग, उपयोग और लेश्या की अपेक्षा विचार करते हैं।

योग की अपेक्षा भंगों का विचार इस प्रकार है—मिथ्यात्व गुणस्थान में १३ योग और भंगों की आठ चौबीसी होती हैं। इनमें से चार मनोयोग, चार वचनयोग, औदारिक और वैक्रिय काययोग इन दस योगों में से प्रत्येक में भंगों की आठ-आठ चौबीसी होती है, जिससे १० को ८ से गुणित कर देने पर ८० चौबीसी हुई। किन्तु औदारिक मिश्र काययोग, वैक्रियमिश्र काययोग और कर्मण काययोग इन तीन योगों में से प्रत्येक में अनन्तानुबन्धी के उदय सहित चार-चार चौबीसी होती हैं। इसका कारण यह है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्क की विसंयोजना करने पर जीव मिथ्यात्व गुणस्थान में जाता है, उसको जब तक अनन्तानुबन्धी का उदय नहीं होता तब तक मरण नहीं होता। अतः इन तीन योगों में अनन्तानुबन्धी के उदय से रहित चार चौबीसी सम्भव नहीं हैं। विशेष स्पष्टीकरण इस प्रकार है कि जिनमें अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना की है, ऐसा जीव जब मिथ्यात्व को प्राप्त होता है तब उसके अनन्तानुबन्धी का उदय एक प्रलयी काल के बाद होता है, ऐसे जीव का अनन्तानुबन्धी का उदय होने पर ही मरण होता है, पहले नहीं। जिससे उक्त तीनों योगों में अनन्तानुबन्धी के उदय से रहित चार चौबीसी नहीं पाई जाती है।

स्त्रीवेद के साथ सम्यग्दृष्टियों का उत्पाद देखा जाता है।^१ इसी बात को चूर्णि में भी स्पष्ट किया है—

कयाइ होज्ज इत्यिवेयोसु वि ।

अर्थात्—कदाचित् सम्यग्दृष्टि जीव स्त्रीवेदियों में भी उत्प होता है। तथा चौथे गुणस्थान के औदारिकमिश्र काययोग में स्त्रीवे और नपुंसकवेद नहीं होता है। क्योंकि स्त्रीवेदी और नपुंसकवेदी तिर्य और मनुष्यों में अविरत सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न नहीं होते हैं, अतः औदारिक मिश्र काययोग में भंगों की ८ चौबीसी प्राप्त न होकर आठ अष्टक प्राप्त होते हैं। स्त्रीवेदी और नपुंसकवेदी सम्यग्दृष्टि जीव औदारिक-मिश्र काययोगी नहीं होता है। यह बहुलता की अपेक्षा से समझना चाहिए।^२ इस प्रकार अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में दस योगों की ८० चौबीसी, वैक्रियमिश्र काययोग और कर्मण काययोग, इन दोनों में प्रत्येक के आठ-आठ षोडशक और औदारिकमिश्र काययोग के आठ अष्टक होते हैं। जिनके भंग $८० \times २४ = १९२०$ तथा $१६ \times ८ = १२८$ पुनः $१६ \times ८ = १२८$ और $८ \times ८ = ६४$ होते हैं, इनका कुल जोड़

१ (क) ये चाविरतसम्यग्दृष्टेर्वैक्रियमिश्रे कर्मणकाययोगे च प्रत्येकमष्टा-
पष्टौ उदयस्थानविकल्पा एषु स्त्रीवेदो न लभ्यते, वैक्रियकाय-
योगेषु स्त्रीवेदिषु मध्येऽविरतसम्यग्दृष्टेरुत्पादाभावत्। एतच्च
प्रायोवृत्तिमाश्रित्योक्तम्, अन्यथा कदाचित् स्त्रीवेदिष्वपि मध्ये तदु-
त्पादो भवति ।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २१७

(ग) दिगम्बर परम्परा में यही एक मत मिलता है कि स्त्रीवेदियों में
सम्यग्दृष्टि जीव मरकर उत्पन्न नहीं होता है।

२ अविरतसम्यग्दृष्टेर्औदारिकमिश्रकाययोगे मेष्टावुदयस्थानविकल्पास्तौ पौन-
स्यत्वा एव प्राप्तौ, न स्त्रीवेद-नपुंसकवेदमहिताः तिर्यन्-मनुष्ये-
स्त्रीवेद-नपुंसकवेदिषु मध्येऽविरतसम्यग्दृष्टेरुत्पादाभावत्, एतच्च प्रायो-
वृत्तिमाश्रितम् ।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २१७

जो जीव प्रमत्तसंयत गुणस्थान में वैक्रिय काययोग और आहारक काययोग को प्राप्त करके अप्रमत्तसंयत हो जाता है, उसके अप्रमत्त संयत अवस्था में रहते हुए ये दो योग होते हैं। वैसे अप्रमत्तसंयत जीव वैक्रिय और आहारक समुद्घात का प्रारम्भ नहीं करता है, अतः इस गुणस्थान में वैक्रियमिश्र काययोग और आहारकमिश्र काययोग नहीं माना है। इसी कारण सातवें अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में चार मनोयोग, चार वचनयोग और औदारिक, वैक्रिय व आहारक काययोग, ये ग्यारह योग होते हैं। इन योगों में भंगों की आठ-आठ चौबीसी होनी चाहिये थीं। किन्तु आहारक काययोग में स्त्रीवेद नहीं होने से दस योगों में तो भंगों की आठ चौबीसी और आहारक काययोग में आठ षोडशक प्राप्त होते हैं। इन सब भंगों का २०४८ होता है जो अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में योगापेक्षा होते हैं।

आठवें अपूर्वकरण गुणस्थान में ती योग और प्रत्येक योग में की चार चौबीसी होती हैं। अतः यहाँ कुल भंग ८६४ होते हैं। अनिवृत्तिवादर गुणस्थान में योग ६ और भंग १६ होते हैं अतः को ६ से गुणित करने पर यहाँ कुल भंग १४४ प्राप्त होते हैं व दसवें सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान में योग ६ और भंग १ है। अतः य कुल ६ भंग प्राप्त होते हैं।

उपर्युक्त दसों गुणस्थानों के कुल भंगों को जोड़ने पर $२२०८ + १२१६ + ८६० + २२४० + २११२ + २३६८ + २०४८ + ८६४ + १४४ + ६ = १४१६६$ प्रमाण होता है। कहा भी है—

चउदस य सहस्रादं सयं च गुणहतरं उदयमाणं ।*

अर्थात् योगों की अपेक्षा मोहनीयकर्म के कुल उदयविकल्पो का प्रमाण १४१६६ होता है।

योगों की अपेक्षा गुणस्थानों में उदयविकल्पों का विचार करने के अनन्तर अब क्रम प्राप्त पदवृन्दों का विचार करने के लिये अन्तर्भाष्य गाथा उद्धृत करते हैं—

अद्विती वत्तीसं वत्तीसं तद्विमेव वावसा ।

चोयालं चोयालं बीसा वि य मिच्छमाईसु ॥

अर्थात्— मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानों में क्रम से ६८, ३२, ३२, ६०, ५२, ४४, ४४ और २० उदयपद होते हैं ।

यहाँ उदयपद से उदयस्थानों की प्रकृतियां ली गई हैं । जैसे कि मिथ्यात्व गुणस्थान में १०, ६, ८ और ७ प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान हैं और इनमें से १० प्रकृतिक उदयस्थान एक है अतः उसकी दस प्रकृतियां हुई । ६ प्रकृतिक उदयस्थान तीन प्रकृतियों के विकल्प से बनने के कारण तीन हैं अतः उसकी २७ प्रकृतियां हुई । आठ प्रकृतिक उदयस्थान भी तीन प्रकृतियों के विकल्प से बनता है अतः उसकी २४ प्रकृतियां हुई और सात प्रकृतिक उदयस्थान एक है अतः उसकी ७ प्रकृतियां हुई । इस प्रकार मिथ्यात्व में चारों उदयस्थानों की १० + २७ + २४ + ७ = ६८ प्रकृतियां होती हैं । सारादन आदि गुणस्थानों में जो ३२ आदि उदयपद बननाये हैं, उनको भी इसी प्रकार समझना चाहिये ।

अब यदि इन आठ गुणस्थानों के सब उदयपद (६८ से लेकर २० तक) जोड़ दिये जायें तो उनका कुल प्रमाण ३५२ होता है । किन्तु इनमें से प्रत्येक उदयपद में चौबीस-चौबीस भङ्ग होते हैं, अतः ३५२ को २४ से गुणित करने पर ८४४८ प्राप्त होते हैं । ये पदवृन्द अन्तर्भाष्य गुणस्थान तक के जानना चाहिये । इनमें अनिवृत्तिकरण के पदमंथराय गुणस्थान का १, कुल २६ भङ्ग मिला देने पर २६ × ८४४८ प्राप्त होते हैं । ये मिथ्यात्व गुणस्थान में लेकर ११ गुणस्थान तक के सामान्य से पदवृन्द हुए ।

के भङ्ग कम कर देना चाहिये । इसका तात्पर्य यह हुआ कि १३ योगों की अपेक्षा १२ से ३२ को गुणित करके २४ से गुणित करें और वैक्रिय मिश्र की अपेक्षा ३२ को १६ से गुणित करें । इस प्रकार $१२ \times ३२ = ३८४ \times २४ = ९२१६$ तथा वैक्रियमिश्र के $३२ \times १६ = ५१२$ हुए और ९२१६ और ५१२ का कुल जोड़ ९७२८ होता है । यही ९७२८ पदवृत्त सासादन गुणस्थान में होते हैं ।

मिश्र गुणस्थान में दस योग और उदयपद ३२ हैं । यहाँ स योगों में सब उदयपद और उनके कुल भङ्ग संभव हैं, अतः १० व ३२ से गुणित करके २४ से गुणित करने पर $(३२ \times १० = ३२० \times २४ = ७६८०)$ ७६८० पदवृन्द प्राप्त होते हैं ।

अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में योग १३ और उदयपद ६० होते हैं । सो यहाँ १० योगों में तो सब उदयपद और उनके कुल भङ्ग संभव होने से १० से ६० को गुणित करके २४ से गुणित कर देने पर १० योगों संबंधी कुल भङ्ग १४४०० प्राप्त होते हैं । किन्तु वैक्रियमिश्र काययोग और कार्मण काययोग में स्त्रीवेद का उदय नहीं होने से स्त्रीवेद संबंधी भङ्ग प्राप्त नहीं होते हैं, इसलिये यहाँ २ को ६० से गुणित करके १६ से गुणित करने पर उक्त दोनों योगों सम्बन्धी कुल भङ्ग १६२० प्राप्त होते हैं तथा औदारिकमिश्र काययोग में स्त्रीवेद और नपुंसकवेद का उदय नहीं होने से दो योगों संबंधी भङ्ग प्राप्त नहीं होते हैं । अतः यहाँ ६० को ८ से गुणित करने पर औदारिकमिश्र काययोग की अपेक्षा ४८० भङ्ग प्राप्त होते हैं । इस प्रकार नौ अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में १३ योग संबंधी कुल पदवृत्त $१४४०० + १६२० + ४८० = १६८००$ होते हैं ।

देशधिरन गुणस्थान में योग ११ और पद ५२ हैं और यहाँ सब योगों उदयपद और उनके भङ्ग सम्भव हैं अतः यहाँ ११ से ५२ को करके २४ से गुणित करने पर कुल भङ्ग १३७२८ होते हैं ।

उक्त पदवृन्दों का विवरण इस प्रकार जानना चाहिये—

गुणस्थान	योग	उदयपद	गुणकार	गुणनफल (पदवृन्द)	
मिथ्यात्व	१३	३६	२४	११२३२	१८६१२
	१०	३२	२४	७६८०	
सासादन	१२	३२	२४	६२१६	६७२८
	१	३२	१६	५१२	
मिश्र	१०	३२	२४	७६८०	७६८०
अविरत सम्यग्दृष्टि	१०	६०	२४	१४४००	१६८००
	२	६०	१६	१६२०	
	१	६०	८	४८०	
देवविरत	११	५२	२४	१३७२८	१३७२८
प्रमत्तसंगत	११	४४	२४	११६१६	१३०२४
	२	४४	१६	१४०८	
अप्रमत्तसंगत	१०	४४	२४	१०५६०	११२६४
	१	४४	१६	७०४	
अभूयंकरण	६	२०	२४	४३२०	४३२०
अनिवृत्ति बाधर	६	२	१२	२१६	२५२
	६	१	४	३६	
	६	१	१	६	६
					६५७१७ पदवृन्द

में १२ भंग और एक प्रकृतिक उदयस्थान में ५ भंग होते हैं, जिनका कुल जोड़ १७ हुआ। इन्हें वहाँ संभव उपयोगों की संख्या ७६ गुणित कर देने पर ११६ होते हैं। जिनको पूर्व राशि ७५८४ में मिला देने पर कुल भंग ७७०३ होते हैं। कहा भी है—

उदयानुवओगेसुं सगसयरिसया तिउत्तरा होति ।^१

अर्थात्—मोहनीय के उदयस्थान विकल्पों को वहाँ संभव उपयोगों से गुणित करने पर उनका कुल प्रमाण ७७०३ होता है।

किन्तु मिश्र गुणस्थान में उपयोगों के बारे में एक मत यह भी है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में पांच के वजाय अवधि दर्शन सहित छह उपयोग पाये जाते हैं। अतः इस मत को स्वीकार करने पर मिश्र गुणस्थान की ४ चौबीसी को ६ से गुणित करने से २४ होते हैं और इन २४ को २४ से गुणित करने पर ५७६ होते हैं अर्थात् इस गुणस्थान में ४८० की वजाय ६६ भंग और बढ़ जाते हैं। अतः पूर्व बताये गये ७७०३ भंगों में ६६ को जोड़ने पर कुल भंगों की संख्या ७७६९ प्राप्त होती है। इस प्रकार ये उपयोग-गुणित उदयस्थान भंग जानना चाहिये।

उपयोगों की अपेक्षा उदयविकल्पों का विवरण इस प्रकार है—

गुणस्थान	उपयोग	गुणकार	गुणनफल (उदयविकल्प)
मिथ्यात्व	५	८ × २४	६६०
सासादन	५	४ × २४	४८०
मिश्र	५	४ × २४	४८०

१. पञ्चमंथ, सप्ततिका, भा० ११८।

२. गी० कर्मकाण्ड भा० ४६२ और ४६३ में उपयोगों की अपेक्षा उदयस्थान ७७०३ और पदवृत्त ५१०८३ बताये हैं।

में ४४, अप्रमत्तसंयत में ४४ और अपूर्वकरण में २० उदयस्थान पद हैं इनका कुल जोड़ $४४ + ४४ + २० = १०८$ होता है। इन्हें यहाँ संभव ७ उपयोगों से गुणित करने पर ७५६ हुए। इस प्रकार पहले से लेकर आठवें गुणस्थान तक के सब उदयस्थान पदों का जोड़ $६६० + ६७२ + ७५६ = २०८८$ हुआ। इन्हें भंगों की अपेक्षा २४ से गुणित कर देने पर आठ गुणस्थानों के कुल पदवृन्दों का प्रमाण $२०८८ \times २४ = ५०११२$ होता है। अनन्तर दो प्रकृतिक उदयस्थान के पदवृन्द २४ और एक प्रकृतिक उदयस्थान के पदवृन्द ५, इनका जोड़ २९ हुआ। सो इन २९ को यहाँ संभव ७ उपयोगों से गुणित कर देने पर २०३ पदवृन्द और प्राप्त हुए। जिन्हें पूर्वोक्त ५०११२ पदवृन्दों में मिला देने पर कुल पदवृन्दों का प्रमाण ५०३१५ होता है कहा भी है—

पन्नासं च सहस्रा तिन्नि सया चैव पन्नारा ।^१

अर्थात्—मोहनीय के पदवृन्दों को यहाँ संभव उपयोगों से गुणित करने पर उनका कुल प्रमाण पचास हजार तीनसौ पन्द्रह ५०३१५ होता है।

उक्त पदवृन्दों की संख्या मिश्र गुणस्थान में पांच उपयोग मात्र की अपेक्षा जानना चाहिये। लेकिन जब मतान्तर से पांच की वजह उपयोग स्वीकार किये जाते हैं तब इन पदवृन्दों में एक अधिक उपयोग के पदवृन्द $१ \times २२ \times २४ = ७६८$ भंग और बढ़ जाते हैं और कुल पदवृन्दों की संख्या ५०३१५ की वजाय ५१०८३ हो जाती है।

उपयोगों की अपेक्षा पदवृन्दों का विवरण इस प्रकार जानना चाहिये—

^१ सप्ततिका प्रकाशिका पृष्ठ ३१८ ।

अप्रमत्तसंयत, इन तीन गुणस्थानों में तेजोलेश्या आदि तीन शुभ लेश्या हैं और अपूर्वकरण आदि आगे के गुणस्थानों में एक शुक्ललेश्या होती है।

मिथ्यात्व आदि गुणस्थानों में से प्रत्येक में प्राप्त चौबीसी पहले वतलाई जा चुकी है। इसलिये तदनुसार मिथ्यात्व में ८, सासादन में ४ और मिश्र में ४ तथा अविरत सम्यग्दृष्टि में ८ चौबीसी हुई। इनका कुल जोड़ २४ हुआ। इन्हें ६ से गुणित कर देने पर $२४ \times ६ = १४४$ हुए। देशविरत में ८, प्रमत्तविरत में ८ और अप्रमत्तविरत में ८ चौबीसी हैं। जिनका कुल जोड़ २४ हुआ। इन तीन गुणस्थानों में तीन शुभ लेश्यायें होने के कारण $२४ \times ३ = ७२$ होते हैं। अपूर्वकरण गुणस्थान में ४ चौबीसी हैं, लेकिन यहाँ सिर्फ एक शुक्ल लेश्या होने से सिर्फ ४ ही प्राप्त होते हैं। उक्त आठ गुणस्थानों की कुल संख्या का जोड़ $१४४ + ७२ + ४ = २२०$ हुआ। इन्हें २४ से गुणित कर देने पर आठ गुणस्थानों के कुल उदयस्थान विकल्प $२२० \times २४ = ५२८०$ होते हैं। अनन्तर इनमें दो प्रकृतिक उदयस्थान के १२ और एक प्रकृतिक उदयस्थान के ५ इस प्रकार १७ भंगों को और मिला देने पर कुल उदयस्थान विकल्प $५२८० + १७ = ५२९७$ होते हैं। ये ५२९७ लेश्याओं की अपेक्षा उदयस्थान विकल्प जानना चाहिये।

इन उदयस्थान विकल्पों का विवरण क्रमशः इस प्रकार है—

गुणस्थान	लेश्या	गुणकार	गुणनफल (उदयविकल्प)
मिथ्यात्व	६	८×२४	१९५२
सासादन	६	४×२४	५७६
मिश्र	६	४×२४	५७६
	६	८×२४	१९५२

अर्थात्—मोहनीयकर्म के उदयस्थान और पदवृन्दों को लेश्याओं से गुणित करने पर उनका कुल प्रमाण क्रम से ५२६७ और ३८२३७^१ होता है।

लेश्याओं की अपेक्षा पदवृन्दों का विवरण इस प्रकार जानना चाहिये—

गुणस्थान	लेश्या	उदयपद	गुणकार	गुणनफल (पदवृन्द)
मिथ्यात्व	६	६८	२४	६७६२
मासादन	६	३२	२४	४६०८
मिथ्य	६	३२	२४	४६०८
अविरत	६	६०	२४	८६४०
देशविरत	३	५२	२४	३७४४
प्रमत्तमंयत	३	४४	२४	३१६८
अप्रमत्तमंयत	३	४४	२४	३१६८
अपूर्वकरण	१	२०	२४	४८०
अनिवृत्तिशर	१	२	१२	२४
	१	१	४	४
सूक्ष्ममंयत	१	१	१	१
				३८२३७ पदवृन्द

१. श्री रामकांत मा० ५०४ और ५०४ में भी लेश्याओं की अपेक्षा इस प्रकार ५२६७ और पदवृन्द ३८२३७ बतावते हैं।

होने के कारण का विचार पहले किया जा चुका है। अतः यहाँ संके
मात्र करते हैं कि—‘तिण्णेमे’—अर्थात् पहले मिथ्यात्व गुणस्थान
२८, २७ और २६ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान हैं तथा ‘एगेम’ दूस
सासादन गुणस्थान में सिर्फ एक २८ प्रकृतिक सत्तास्थान ही होता
है। मिथ्य गुणस्थान में २८, २७ और २४ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान
हैं—‘तिग मीसे’। इसके बाद चौथे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान से
लेकर सातवें अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक चार गुणस्थानों में से प्रत्येक
में २८, २४, २३, २२ और २१ प्रकृतिक, ये पाँच-पाँच सत्तास्थान हैं।
आठवें अपूर्वकरण गुणस्थान में २८, २४ और २१ प्रकृतिक ये तीन
सत्तास्थान हैं। नौवें गुणस्थान—अनिवृत्तिवादर में २८, २४, २१, १३,
१२, ११, ५, ४, ३, २ और १ प्रकृतिक, ये ग्यारह सत्तास्थान हैं—‘एक्कार
वायरम्मी’। सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान में २८, २४, २१ और १ प्रकृतिक,
ये चार सत्तास्थान हैं तथा ‘तिन्नि उवसंते’ उपशान्तमोह गुणस्थान में
२८, २४ और २१ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं।^१

इस प्रकार से गुणस्थानों में मोहनीयकर्म के सत्तास्थानों के
बतलाने के बाद अब प्रसंगानुसार संवेध भङ्गों का विचार करते हैं—

- १ तिण्णेमे एगेम दो मिस्से चदुमु पण णियट्ठीए ।
तिण्णि ग भूलेयारं मुहुमे चत्तारि तिण्णि उवसंते ॥

—गो० कर्मकांड गा० १०६

मोहनीयकर्म के मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में ३, सासादन में १, मिथ्य
में २, अविरत सम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानों में पाँच-पाँच, अपूर्वकरण
में ३, अनिवृत्तिवादर में ११, सूक्ष्मसंपराय में ४ और उपशान्तमोह में
३ सत्तास्थान हैं।

निर्देश—कर्मकांड में मिथ्य गुणस्थान के ३ और गो० कर्मकांड में
सत्तास्थान बतलाने हैं।

में २८, २४ २३ और २२ प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान हैं। इस प्रकार यहाँ कुल १७ सत्तास्थान होते हैं।

प्रमत्त विरत गुणस्थान में ६ प्रकृतिक बंधस्थान तथा ४, ५, ६ और ७ प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान हैं। इनमें से ४ प्रकृतिक उदयस्थानों २८, २४ और २१ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं। ५ और ६ प्रकृतिक उदयस्थानों में से प्रत्येक में २८, २४, २३, २२ और २१ प्रकृतिक ये पांच-पांच सत्तास्थान हैं तथा ७ प्रकृतिक उदयस्थान में २८, २४, २३ और २२ प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान हैं। इस प्रकार यहाँ कुल १७ सत्तास्थान होते हैं।

अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में पूर्वोक्त प्रमत्तसंयत गुणस्थान की तरह १७ सत्तास्थान जानना चाहिये।

अपूर्वकरण गुणस्थान में ६ प्रकृतिक बंधस्थान और ४, ५ तथा ६ प्रकृतिक उदयस्थान तथा इन तीन उदयस्थानों में से प्रत्येक में २८, २४ और २१ प्रकृतिक ये तीन-तीन सत्तास्थान होते हैं। इस प्रकार यहाँ कुल ६ सत्तास्थान होते हैं।

अनिवृत्तिवादर गुणस्थान में ५, ४, ३, २ और १ प्रकृतिक, ये पांच बंधस्थान तथा २ और १ प्रकृतिक, ये दो उदयस्थान हैं। इनमें से २ प्रकृतिक बंधस्थान और २ प्रकृतिक उदयस्थान के रहते हुए २८, २४, २३, २१, २० और ११ प्रकृतिक, ये छह सत्तास्थान होते हैं। ४ प्रकृतिक बंधस्थान और १ प्रकृतिक उदयस्थान के रहते २८, २४, २१, २० और ११ प्रकृतिक, ये छह सत्तास्थान हैं। ३ प्रकृतिक बंधस्थान और १ प्रकृतिक उदयस्थान के रहते २८, २४, २१, ४ और ३ प्रकृतिक, ये पांच सत्तास्थान हैं। २ प्रकृतिक बंधस्थान और १ प्रकृतिक उदयस्थान के रहते २८, २४, २१, ३ और २ प्रकृतिक, ये पांच सत्तास्थान होते हैं और १ प्रकृतिक बंधस्थान और १ प्रकृतिक उदयस्थान के रहते हुए २८, २४, २१, २ और १ प्रकृतिक, ये पांच सत्तास्थान होते हैं।

शब्दार्थ—छणव छक्कं—छह, नौ और छह, तिग सत्त दुगं—तीन, सात और दो, दुग तिग दुगं—दो, तीन और दो, तिगठ्ठ चऊ—तीन, आठ और चार, दुग छ च्चउ—दो, छह और चार, दुग पण चउ—दो, पांच और चार, चउ दुग चउ—चार, दो और चार, पण एग चऊ—पांच, एक और चार ।

एगेगमठ्ठ—एक, एक और आठ, एगेगमठ्ठ—एक, एक और आठ, छउमत्थ—छद्मस्थ (उपशान्तमोह, क्षीणमोह) केवलजिणाणं—केवलि जिन (सयोगि और अयोगि केवली) को अनुक्रम से, एग चऊ—एक और चार, एग चऊ—एक और चार, अठ्ठ चउ—आठ और चार, दु छक्कं—दो और छह, उदयंसा—उदय और सत्ता स्थान ।

गाथार्थ—छह, नौ, छह; तीन, सात और दो; दो, तीन और दो; तीन, आठ और चार; दो, छह और चार; दो, पांच और चार; चार, दो और चार; पांच, एक और चार; तथा

एक, एक और आठ; एक, एक और आठ; इस प्रकार अनुक्रम से बंध, उदय और सत्तास्थान आदि के दस गुणस्थान में होते हैं तथा छद्मस्थ जिन (११ और १२ गुणस्थान) में तथा केवली जिन (१३, १४, गुणस्थान) में अनुक्रम से एक चार और एक, चार तथा आठ और चार; दो और छह उदय व सत्तास्थान होते हैं । जिनका विवरण इस प्रकार है—

(शेष पृ० ३०७ का)

कर्मप्रत्यय से गो० कर्मकांड में इन गुणस्थानों के संग मिश्र व मासादन में ३-७-१, देशविरत में २-२-४ अप्रमत्तविरत में ५ मि केवली में २-४ ।

एक कर्मप्रत्यय में उक्त गुणस्थानों के संग इस प्रकार है—मासादन में देशविरत में ७-६-४, अप्रमत्तविरत में ४-२-४, मायोगिकेवली में ।

२३, २५, २६, २८, २९ और ३० प्रकृतिक, ये छह बंधस्थान हैं। इनमें से २३ प्रकृतिक बंधस्थान अपर्याप्त एकेन्द्रिय के योग्य प्रकृतियों का बंध करने वाले जीव को होता है। इसके बादर और सूक्ष्म तथा प्रत्येक और साधारण के विकल्प से चार भंग होते हैं। २५ प्रकृतिक बंधस्थान पर्याप्त एकेन्द्रिय तथा अपर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तिर्यच पंचेन्द्रिय और मनुष्य गति के योग्य प्रकृतियों का बंध करने वाले जीवों के होता है। इनमें से पर्याप्त एकेन्द्रिय के योग्य बंध होते समय २० भंग होते हैं तथा शेष अपर्याप्त द्वीन्द्रिय आदि की अपेक्षा एक-एक भंग होता है। इस प्रकार २५ प्रकृतिक बंधस्थान के कुल भंग २५ हुए।

२६ प्रकृतिक बंधस्थान पर्याप्त एकेन्द्रिय के योग्य बंध करने वाले जीव के होता है। इसके १६ भंग होते हैं तथा २८ प्रकृतिक बंधस्थान देवगति या नरकगति के योग्य प्रकृतियों का बंध करने वाले जीव के होता है। इनमें से देवगति के योग्य २८ प्रकृतियों का बंध होते समय तो ८ भंग होते हैं और नरक गति के योग्य प्रकृतियों का बंध होते समय १ भंग होता है। इस प्रकार २८ प्रकृतिक बंधस्थान के ९ भंग हैं।

२९ प्रकृतिक बंधस्थान पर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तिर्यच पंचेन्द्रिय और मनुष्य गति के योग्य प्रकृतियों का बंध करने वाले जीवों के होता है। इनमें से पर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय के योग्य २९ प्रकृतियों का बंध होते समय प्रत्येक के आठ-आठ भंग होते हैं। तिर्यच पंचेन्द्रिय के योग्य २९ प्रकृतियों का बंध होते समय ४६०८ भंग तथा मनुष्य गति के योग्य २९ प्रकृतियों का बंध होते समय भी ४६०८ भंग होते हैं। इस प्रकार २९ प्रकृतिक बंधस्थान के कुल ९२४० भंग होते हैं।

तीनों पर प्रकृति के साथ देवगति के योग्य २९ प्रकृतिक बंधस्थान विरहादृष्टि के नहीं होता है, क्योंकि तीनों पर प्रकृति का बंध सम्यक्

विशेषार्थ—इन दो गाथाओं में यह बतलाया गया है कि किस बंधस्थान में कितने उदयस्थान और कितने सत्तास्थान होते हैं। लेकिन यह ज्ञात नहीं होता है कि वे उदय और सत्तास्थान कितनी प्रकृति वाले हैं और कौन-कौनसे हैं। अतः इस बात को आचार्य मलयगिरि कृत टीका के आधार से स्पष्ट किया जा रहा है।

तेईस, पच्चीस और छव्वीस प्रकृतिक बंधस्थानों में से प्रत्येक में नौ उदयस्थान और पाँच सत्तास्थान हैं—‘नव पंचोदय संता.....’। इनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—तेईस प्रकृतिक बंधस्थान में अपर्याप्त एकेन्द्रिय योग्य प्रकृतियों का बंध होता है और इसको एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तिर्यच पंचेन्द्रिय और मनुष्य बाँधते हैं। इन तेईस प्रकृतियों को बाँधने वाले जीवों के सामान्य से २१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक, ये नौ उदयस्थान होते हैं। इन उदयस्थानों को इस प्रकार घटित करना चाहिये—जो एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तिर्यच पंचेन्द्रिय और मनुष्य तेईस प्रकृतियों का बंध कर रहा है, उसको भव के अपान्तराल में तो २१ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। क्योंकि २१ प्रकृतियों के उदय में अपर्याप्त एकेन्द्रिय के योग्य २३ प्रकृतियों का बंध सम्भव है।

२४ प्रकृतिक उदयस्थान अपर्याप्त और पर्याप्त एकेन्द्रियों के होता है। क्योंकि यह उदयस्थान एकेन्द्रियों के सिवाय अन्य नहीं पाया जाता है। २५ प्रकृतिक उदयस्थान पर्याप्त एकेन्द्रियों और वैक्रिय शरीर को प्राप्त मिथ्यादृष्टि तिर्यच और मनुष्यों के होता है। २६ प्रकृतिक उदयस्थान पर्याप्त एकेन्द्रिय तथा पर्याप्त और अपर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तिर्यच पंचेन्द्रिय और मनुष्यों के होता है। २७ प्रकृतिक उदयस्थान पर्याप्त एकेन्द्रियों और वैक्रिय शरीर को प्राप्त मिथ्यादृष्टि तिर्यच और मनुष्यों के होता है। २८, २९, ३० प्रकृतिक, ये नौ उदयस्थान

$$\frac{1}{2} \left(\frac{1}{2} \right)^n = \frac{1}{2^{n+1}} \quad \text{for } n \geq 0$$



है ।

गुरुमहिमा विवर्ति शुक्लध्यान—जिस शुक्लध्यान में सर्वत्र भगवान् द्वारा योग विरोध के रूप में अनन्तः सूक्ष्म वायव्योप के आशय में अन्य योगों को रोक दिया जाता है ।

सूक्ष्म क्षेत्र पक्षोपम—बादर क्षेत्र पक्ष के वातावरणों में से प्रत्येक के असंस्कारों को रोक करके पक्ष को ठगाना जरूरी है । ये रोक उस पक्ष में आकाश के जितने प्रदेशों को रोकें और जिस प्रदेशों को रोकें न करें, उनसे प्रति समय एक-एक प्रदेश का अवहरण करते-करते जितने समय में स्पष्ट और अस्पष्ट सभी प्रदेशों का अवहरण किया जाता है, उतने समय को एक सूक्ष्म क्षेत्र पक्षोपम कहते हैं ।

सूक्ष्म क्षेत्र पुद्गल परावर्त—कोई एक जीव संसार में भ्रमण करते हुए आकाश

। पत्रना ६१ ।

स्पर्शक—संवेदनार्थों के समूह को स्पर्शक कहते हैं ।

स्पर्श मासद्वय—जिस वस्तु के सङ्घर्ष से शरीर का स्पर्श कर्कश, मृदु, स्निग्ध, रुक्ष आदि रूप हो ।

स्पर्शानुबोधद्वार—विशुद्धित वस्तु वाले जीवों द्वारा किसे जाने वाले क्षेत्र स्पर्श का समुच्चय रूप से निर्देश करना ।

स्पर्शानेन्द्रिय स्पर्शजातप्रवृत्ति—स्पर्शानेन्द्रिय के द्वारा होने वाला अत्यन्त अव्यक्त ज्ञान ।

अनन्तानुबन्धी सन्निवृत्ति— (अनन्तानुबन्धी श्लोक आदि २४ प्रकृतियाँ) अनन्तानुबन्धी श्लोक, मान, मामा, लोम; न्यप्रोषपरिमण्डल, मादि, वामन, कुञ्ज संस्थान; अशुभमनाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीर्तिका संहतन; अशुभ विहायोमति, नीचगोन, स्त्रीवेद, दुर्भंग नाम, दुःस्वर नाम, अनादेय नाम, निदा-निदा, प्रचवा-प्रचवा, स्वयान्ति, उद्योत नाम, तिर्यचमति, तिर्यना-मुपार्थ ।

अनन्तानुबन्धी श्लोक— अनन्तानुबन्धी, श्लोक मान, मामा, लोम ।

अनन्तानुबन्धी सन्निवृत्ति— (अनन्तानुबन्धी श्लोक आदि २६ प्रकृतियाँ) अनन्तानुबन्धी श्लोक, मान, मामा, लोम; न्यप्रोषपरिमण्डल, सादि, वामन, कुञ्ज संस्थान; अशुभमनाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीर्तिका संहतन; अशुभ विहायोमति, नीचगोन, स्त्रीवेद, दुर्भंग नाम, दुःस्वर नाम, अनादेय नाम,

100

100

(६)

दर्शनसमुच्चयक—चतुर्दर्शन, अचतुर्दर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन ।

दर्शनत्रिक—चतुर्दर्शन, अचतुर्दर्शन, अवधिदर्शन ।

दर्शनद्विक—चतुर्दर्शन, अचतुर्दर्शन ।

दर्शनावरणसमुच्चयक—चतुर्दर्शनावरण, अचतुर्दर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवलदर्शनावरण ।

दर्शनावरणमल्लक—चतुर्दर्शनावरण, अचतुर्दर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवलदर्शनावरण, निरा, प्रमत्ता ।

दर्शनमोहनिक—मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व मोहनीय ।

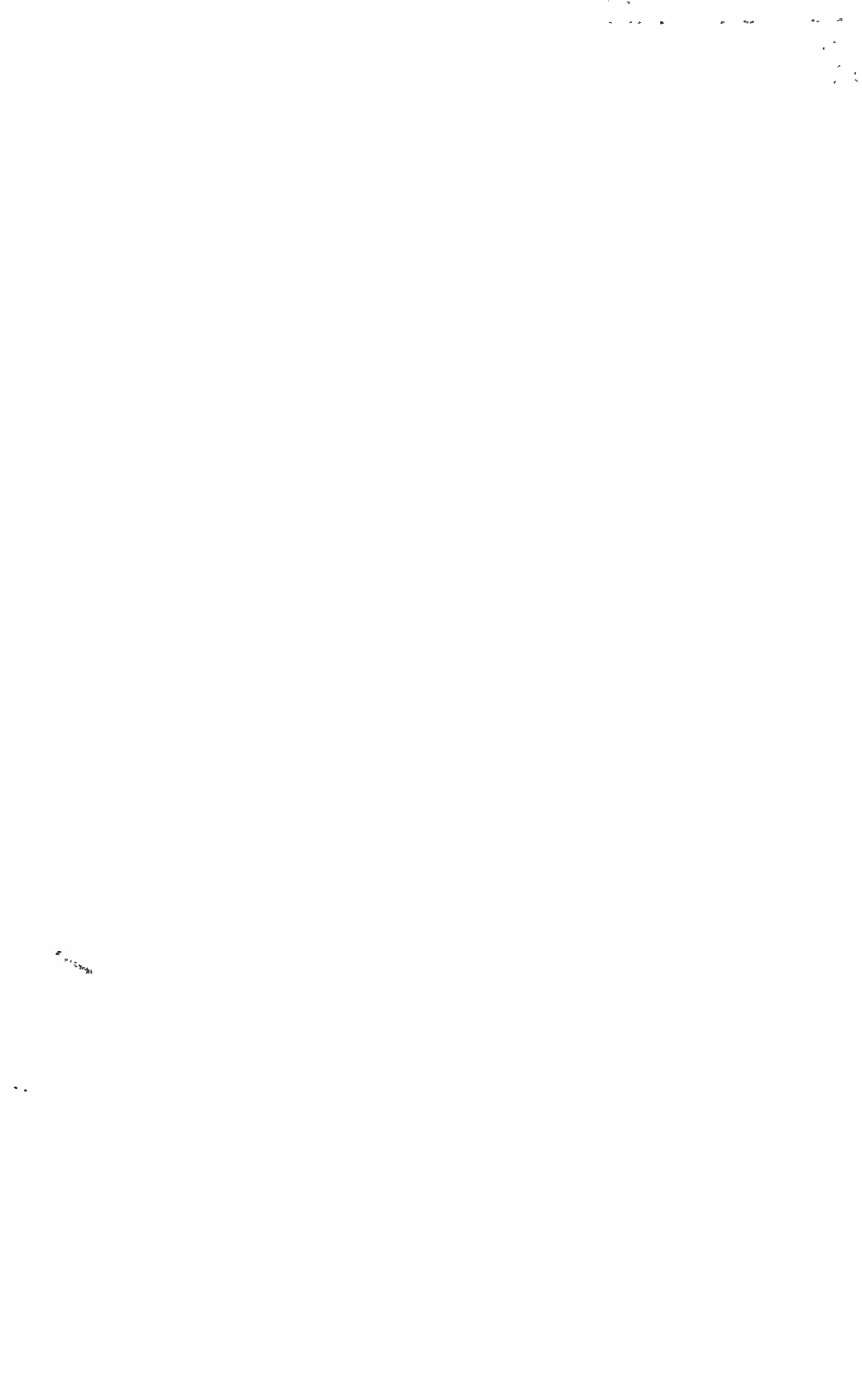
दर्शनमोहसप्तक—मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व मोहनीय, अनन्तानु-
बन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ ।

दुर्भगचतुष्क—दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अगशःकीर्ति नाम ।



1
2
3
4
5
6
7
8
9
10
11
12
13
14
15
16
17
18
19
20
21
22
23
24
25
26
27
28
29
30
31
32
33
34
35
36
37
38
39
40
41
42
43
44
45
46
47
48
49
50
51
52
53
54
55
56
57
58
59
60
61
62
63
64
65
66
67
68
69
70
71
72
73
74
75
76
77
78
79
80
81
82
83
84
85
86
87
88
89
90
91
92
93
94
95
96
97
98
99
100
101
102
103
104
105
106
107
108
109
110
111
112
113
114
115
116
117
118
119
120
121
122
123
124
125
126
127
128
129
130
131
132
133
134
135
136
137
138
139
140
141
142
143
144
145
146
147
148
149
150
151
152
153
154
155
156
157
158
159
160
161
162
163
164
165
166
167
168
169
170
171
172
173
174
175
176
177
178
179
180
181
182
183
184
185
186
187
188
189
190
191
192
193
194
195
196
197
198
199
200
201
202
203
204
205
206
207
208
209
210
211
212
213
214
215
216
217
218
219
220
221
222
223
224
225
226
227
228
229
230
231
232
233
234
235
236
237
238
239
240
241
242
243
244
245
246
247
248
249
250
251
252
253
254
255
256
257
258
259
260
261
262
263
264
265
266
267
268
269
270
271
272
273
274
275
276
277
278
279
280
281
282
283
284
285
286
287
288
289
290
291
292
293
294
295
296
297
298
299
300
301
302
303
304
305
306
307
308
309
310
311
312
313
314
315
316
317
318
319
320
321
322
323
324
325
326
327
328
329
330
331
332
333
334
335
336
337
338
339
340
341
342
343
344
345
346
347
348
349
350
351
352
353
354
355
356
357
358
359
360
361
362
363
364
365
366
367
368
369
370
371
372
373
374
375
376
377
378
379
380
381
382
383
384
385
386
387
388
389
390
391
392
393
394
395
396
397
398
399
400
401
402
403
404
405
406
407
408
409
410
411
412
413
414
415
416
417
418
419
420
421
422
423
424
425
426
427
428
429
430
431
432
433
434
435
436
437
438
439
440
441
442
443
444
445
446
447
448
449
450
451
452
453
454
455
456
457
458
459
460
461
462
463
464
465
466
467
468
469
470
471
472
473
474
475
476
477
478
479
480
481
482
483
484
485
486
487
488
489
490
491
492
493
494
495
496
497
498
499
500
501
502
503
504
505
506
507
508
509
510
511
512
513
514
515
516
517
518
519
520
521
522
523
524
525
526
527
528
529
530
531
532
533
534
535
536
537
538
539
540
541
542
543
544
545
546
547
548
549
550
551
552
553
554
555
556
557
558
559
560
561
562
563
564
565
566
567
568
569
570
571
572
573
574
575
576
577
578
579
580
581
582
583
584
585
586
587
588
589
590
591
592
593
594
595
596
597
598
599
600
601
602
603
604
605
606
607
608
609
610
611
612
613
614
615
616
617
618
619
620
621
622
623
624
625
626
627
628
629
630
631
632
633
634
635
636
637
638
639
640
641
642
643
644
645
646
647
648
649
650
651
652
653
654
655
656
657
658
659
660
661
662
663
664
665
666
667
668
669
670
671
672
673
674
675
676
677
678
679
680
681
682
683
684
685
686
687
688
689
690
691
692
693
694
695
696
697
698
699
700
701
702
703
704
705
706
707
708
709
710
711
712
713
714
715
716
717
718
719
720
721
722
723
724
725
726
727
728
729
730
731
732
733
734
735
736
737
738
739
740
741
742
743
744
745
746
747
748
749
750
751
752
753
754
755
756
757
758
759
760
761
762
763
764
765
766
767
768
769
770
771
772
773
774
775
776
777
778
779
780
781
782
783
784
785
786
787
788
789
790
791
792
793
794
795
796
797
798
799
800
801
802
803
804
805
806
807
808
809
810
811
812
813
814
815
816
817
818
819
820
821
822
823
824
825
826
827
828
829
830
831
832
833
834
835
836
837
838
839
840
841
842
843
844
845
846
847
848
849
850
851
852
853
854
855
856
857
858
859
860
861
862
863
864
865
866
867
868
869
870
871
872
873
874
875
876
877
878
879
880
881
882
883
884
885
886
887
888
889
890
891
892
893
894
895
896
897
898
899
900
901
902
903
904
905
906
907
908
909
910
911
912
913
914
915
916
917
918
919
920
921
922
923
924
925
926
927
928
929
930
931
932
933
934
935
936
937
938
939
940
941
942
943
944
945
946
947
948
949
950
951
952
953
954
955
956
957
958
959
960
961
962
963
964
965
966
967
968
969
970
971
972
973
974
975
976
977
978
979
980
981
982
983
984
985
986
987
988
989
990
991
992
993
994
995
996
997
998
999
1000





1

2

3

4

5

6

7

8

9

10

11

12

13

14

15

16

17

18

19

20

21

22

23

24

25

26

27

28

29

30

31

32

33

34

35

36

37

1871



अब सामान्य से मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में बंध, उदय और मत्ता स्थानों का कथन करने के बाद उनके संबंध का विचार करते हैं।

२३ प्रकृतियों का बंध करने वाले मिथ्यादृष्टि जीव के पूर्वोक्त नौ उदयस्थान संभव हैं। किन्तु २१, २५, २७, २८, २९ और ३० प्रकृतिक, इन ६ उदयस्थानों में देव और नारक संबंधी जो भंग हैं, वे यहाँ नहीं पाये जाते हैं। क्योंकि २३ प्रकृतिक बंधस्थान में अपर्याप्त एकेन्द्रियों के योग्य प्रकृतियों का बंध होता है परन्तु देव अपर्याप्त एकेन्द्रियों के

दयनीयप्रायोग्य २६ प्रकृतिक सत्तास्थान का द्वांद्वर में विकलेन्द्रिय, तिर्यच पंचेन्द्रिय और मनुष्य मति के योग्य २६ प्रकृतियों का बंध करने वाले मिथ्यादृष्टि जीव के सामान्य से पूर्वोक्त ६ उदयस्थान और ६२, ८६, ८८, ८९, ९० और ७८ प्रकृतिक, ये द्वादश सत्तास्थान होते हैं। इनमें से २१ प्रकृतिक उदयस्थान में सभी सत्तास्थान प्राप्त हैं। उसमें भी ८६ प्रकृतिक सत्तास्थान उगी जीव के होता है जिसने नरकायु का बंध करने के पश्चात् वेदक सम्पादना को प्राप्त करके तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर लिया है। अनन्तर जो मिथ्यात्व में जाकर और मरकर नारकों में उत्पन्न हुआ है तथा ६२ और ८८ प्रकृतिक सत्तास्थान देव, नारक, मनुष्य, विकलेन्द्रिय, तिर्यच पंचेन्द्रिय और एकेन्द्रियों की अपेक्षा जानना चाहिये। ८६ और ९० प्रकृतिक सत्तास्थान विकलेन्द्रिय, तिर्यच पंचेन्द्रिय, मनुष्य और एकेन्द्रियों की

होना है। यहाँ २१, २४, २५, २६ प्रकृतिक इन चार उदयस्थानों में उन पाँच सत्तास्थानों का कथन हो पहले के समान जानना चाहिये तथा दोष रहे २३, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक उदयस्थान, तो इनमें से प्रत्येक में ७८ प्रकृतिक के विवाह योग चार सत्तास्थान होते हैं। इन प्रकार ३० प्रकृतियों का बंध करने वाले मिथ्यादृष्टि जीव के कुल ४० सत्तास्थान होते हैं।

मिथ्यादृष्टि जीव के बंध, उदय और सत्ता स्थानों और उनके संवेध का कथन समाप्त हुआ। जिनका विवरण इस प्रकार जानना चाहिये—

$$x^2 = \frac{1}{2} \left(\frac{1}{2} + \frac{1}{2} \right)$$

$$x^2 = \frac{1}{2} \left(\frac{1}{2} + \frac{1}{2} \right)$$

$$x^2 = \frac{1}{2} \left(\frac{1}{2} + \frac{1}{2} \right)$$

इनमें से २१ प्रकृतिक उदयस्थान एकैन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, त्रिपञ्च
 पञ्चेन्द्रिय, मनुष्य और देवों के होता है। नारकों में सासादन सामा-
 दृष्टि जीव उत्पन्न नहीं होते हैं जिससे सासादन में नारकों के २१
 प्रकृतिक उदयस्थान नहीं कहा है। एकैन्द्रियों के २१ प्रकृतिक उदय-
 स्थान के रहते हुए बादर और पर्वात के साथ समशीति के विस्तार
 से दो भंग संभव हैं, क्योंकि सूक्ष्म और अपर्याप्तों में सासादन जीव
 उत्पन्न नहीं होता है, जिससे विकलेन्द्रिय, त्रिपञ्च पञ्चेन्द्रिय और मनुष्यों
 के प्रत्येक और अपर्याप्त के साथ जो एक-एक भंग होता है वह वहाँ
 संभव नहीं है। दोष भंग संभव हैं जो विकलेन्द्रियों के दो-दो, इस प्रकार
 से छह हुए तथा त्रिपञ्च पञ्चेन्द्रियों के ८, मनुष्यों के ८ और देवों के ८
 होते हैं। इस प्रकार २१ प्रकृतिक उदयस्थान के कुल ३२ भंग
 $(२+६+८+८+८=३२)$ हुए।

$$= \frac{1}{2} \left(\frac{1}{2} + \frac{1}{2} \right)$$

$$= \frac{1}{2} \left(\frac{1}{2} + \frac{1}{2} \right)$$

सासादन गुणस्थान के मान उदयस्थानों को बताते हैं कि यहाँ ६२ और वन प्राणिक, ये दो मत्तस्थान हैं। इनमें से जो आत्मिक अवस्था का बंध करके उदयस्थान से व्युत्पन्न होकर सासादन भाग को प्राप्त होता है, उसके ६२ की मत्ता पार्श्व जाती है, अन्य के मत्ता और वन प्रकृतियों की मत्ता चारों मत्तियों के सासादन जीवों के पार्श्व जाती है।

इस प्रकार से सासादन गुणस्थान को बंध, उदय और मत्तास्थानों को जानना चाहिये। अब इनके संबंध का विचार करते हैं।

२८ प्रकृतियों का बंध करने वाले सासादन सम्यग्दृष्टि को ३० और

(४) अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान

मित्र गुणस्थान में बंध आदि स्थानों को बतलाने के लिये अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान के बंध आदि स्थानों को हैं कि उस गुणस्थान में तीन बंधस्थान, आठ उदयस्थान और चार स्थान हैं—'तिग्गड्ढचउ ।' वे इस प्रकार जानना चाहिये कि

२६ प्रकृतिक उदयस्थान क्षायिक सम्यग्दृष्टि या वैदक सम्यग्दृष्टि तिर्येन और मनुष्यों के होता है। ओपशक्तिक सम्यग्दृष्टि जीव तिर्येन और मनुष्यों में उत्पन्न नहीं होता है। अतः यहाँ तीनों प्रकार के सम्यग्दृष्टि जीवों को नहीं कहा है। उसमें भी तिर्येत्तों के मोहनीय की २२ प्रकृतियों की सत्ता की अपेक्षा ही यहाँ वैदक सम्यक्त्व जानना चाहिये।

१ पंचविशति-सप्तविंशत्युदयो देव-नैरयिकान् वैज्यतियंश्मनुष्यांश्चाधिकृत्याव-
सेयी। सप्त नैरयिकः क्षायिकसम्यग्दृष्टिवैदकसम्यग्दृष्टिर्वा, देवस्त्रिविध-
सम्यग्दृष्टिरपि।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २३०

उत्पन्न सत्ता वाले जीव नागों में उत्पन्न नहीं होते हैं। इस प्रकार २१ से लेकर ३० प्रकृतिक उदयस्थानों में से प्रत्येक में सामान्य से ६३, ६२, ८६ और ८८ प्रकृतिक, ये चार-चार सत्तास्थान होते हैं और ३१ प्रकृतिक उदयस्थान में ६२ और ८८ प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान होते हैं। इस प्रकार अविस्त सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में सामान्य से कुल ३० सत्तास्थान हुए। जिनका विवरण निम्न प्रकार से जानना चाहिये—

३० प्रकृतिक उदयस्थान स्वभावस्थ तिर्यग और मनुष्यों के तथा
 विक्रिया करने वाले तिर्यगों के होता है। सो गह्रा प्रारम्भ के दो में से
 प्रत्येक के १४४-१४४ भंग होते हैं, जो द्रव्य संहनन, द्रव्य संस्थान, सुस्वर-
 दुस्वर और प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोमति के विकल्प से प्राप्त होते हैं
 तथा अंतिम का एक भंग होता है। इस प्रकार ३० प्रकृतिक उदय-
 न के कुल २५६ भंग होते हैं। दुर्भंग, अनादेय और अयशःकीर्ति का

(६) प्रमत्तविरत गुणस्थान

अब छठे प्रमत्तशयत गुणस्थान के बंध आदि स्थानों को बतल
हैं कि—'दुग्ध पण चउ'—दो बंधस्थान, पाँच उदयस्थान और च
सत्तास्थान हैं। दो बंधस्थान २८ और २९ प्रकृतिक हैं। इन
विशेष स्पष्टीकरण देशविरत गुणस्थान के समान जानना चाहिये।
पाँच उदयस्थान २५, २७, २८, २९ और ३० प्रकृतिक होते हैं।

१८७/ अप्रमत्तसंयत गुणस्थान

प्रमत्तसंयत गुणस्थान के बंध, उदय और सत्तास्थानों को बताने के बाद अब अप्रमत्तसंयत गुणस्थान के बंध आदि स्थानों को बताने हैं कि 'चउदुग चउ'—चार बंधस्थान, दो उदयस्थान और चार सत्तास्थान हैं। चार बंधस्थान इस प्रकार हैं—२८, २९, ३० और ३१ त्तिक। इनमें से तीर्थकर और आहारकद्विक के बिना २८ प्रकृति

- १ अग्रे स्थापना की श्रुति—आद्यसंहनन तथा अन्तसंहननपुस्तक अन्तुपसमर्थ
प्रतिपक्षके सम्मतेन मया द्विव्यक्तिः । एकमनित्वतिपादकसूत्रमसंगत
—उपस्थापनामोदेष्यति द्रष्टव्यम् ।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २३

द्विगम्य परम्परा में यही एक मत पाया जाता है कि उपसमर्थ
में प्रारम्भ के तीन संहननों में से किसी एक संहनन का उद्गम होता है
इसकी पुष्टि के लिये देखिये गी० कर्मकांड भाषा २६६—
वेदतिय कोदमाणं मामासंजननमेव सुदुर्मते ।
सुदुर्मो लोहो सते वज्जंणारायणारामं ॥

2. 5. 11

1. 1. 11

1

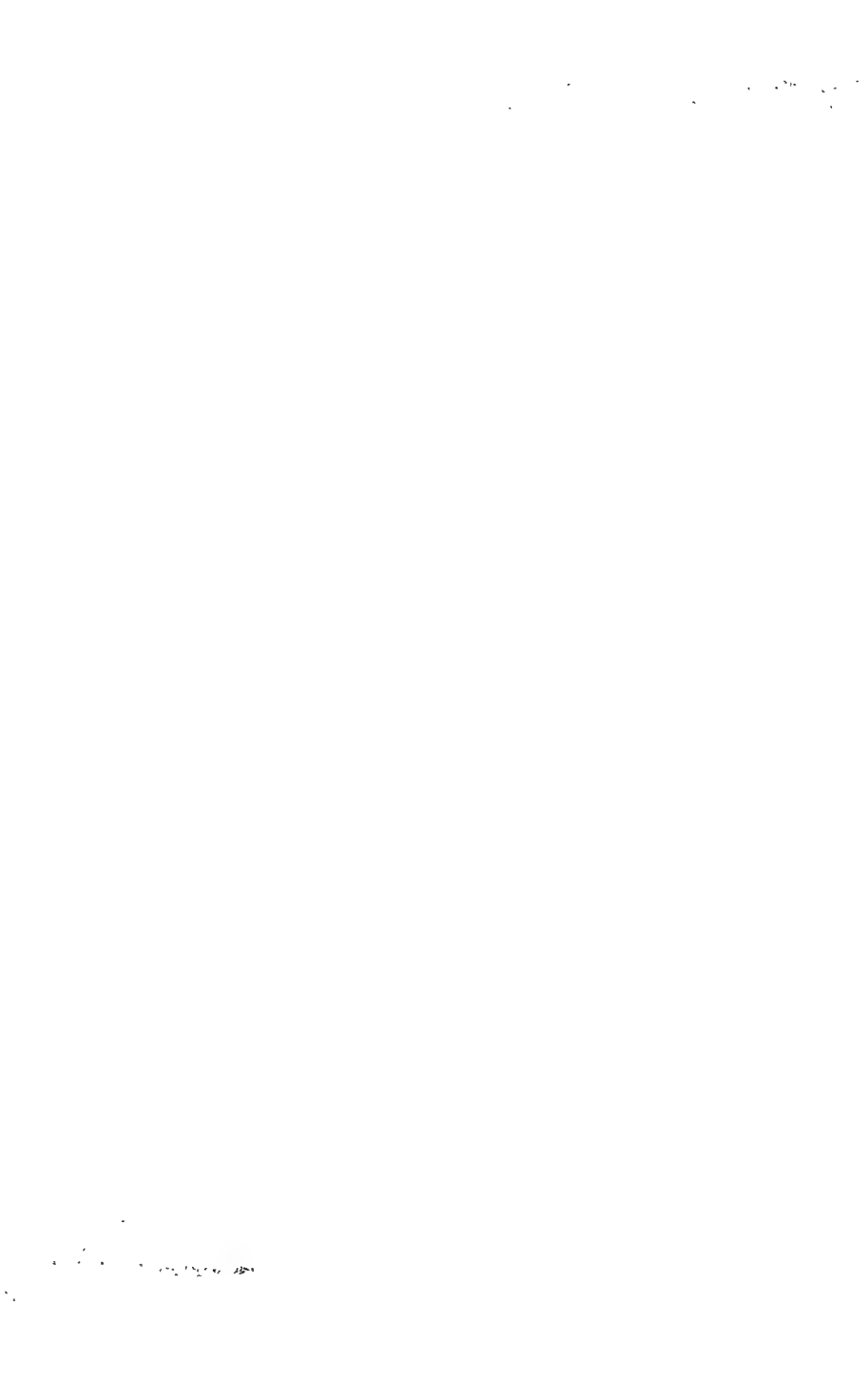
1

अनिवृत्तिवादर गुणस्थान की तरह सूक्ष्मसंस्कार गुणस्थान में भी यशःकोटि रूप एक प्रकृति एक संस्कारस्थान है, ३० प्रकृतिक उपस्थान है तथा पूर्वोक्त ६३ आदि प्रकृतिक, आठ सत्तास्थान हैं। जगत् आठ सत्तास्थानों में से आदि के चार उपशमथोणि में होते हैं और शेष ८० आदि प्रकृतिक, अंत के चार क्षणकथोणि में होते हैं। शेष कथन अनिवृत्तिवादर गुणस्थान की तरह जानना चाहिये।

अन्य उपशांतमोह आदि ग्यारह से लेकर चौदह गुणस्थान का कथन करते हैं—'छउमत्यकेवलजिणानं'।

(१४) अयोगिकेवली गुणस्थान

अयोगिकेवली गुणस्थान में उदयस्थान और सत्तास्थान क्रमशः—
'दु छवकं' अर्थात् दो उदयस्थान और छह सत्तास्थान हैं। इनमें से दो
उदयस्थान ६ और ८ प्रकृतिक हैं। नौ प्रकृतियों का उदय तीर्थकर



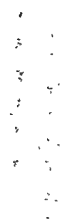
मन्वाग्रथानी को नरक और तिर्यगों में बतलाते हैं कि—संज्ञा ११
 पाँच मन्वाग्रथानी मन्वाग्रथानी । अर्थात् नरकगति में ६२, ८६ और ८८
 प्रकृतिक, ये तीन मन्वाग्रथानी हैं । तिर्यगगति में पाँच मन्वाग्रथानी ६२,
 ८८, ८६, ८०, और ७८ प्रकृतिक हैं । मनुष्यगति में ग्यारह सत्तास्थान
 हैं—६२, ६२, ८६, ८८, ८६, ८०, ७६, ७६, ७४, ६ और ८ प्रकृतिक ।
 देवगति में चार मन्वाग्रथानी हैं—६२, ६२, ८६ और ८८ प्रकृतिक ।

इस प्रकार नरक, तिर्यग, मनुष्य और देवगति के बन्धस्थान,
 उदयस्थान और सत्तास्थानों को बतलाने के बाद अब उनके संबन्ध
 का विचार नरक, तिर्यग, मनुष्य और देवगति के अनुक्रम से करते हैं ।

नरक गति में संक्षेप—पञ्चेन्द्रिय तिर्यगगति के योग्य २६ प्रकृतियों
 का बन्ध करने वाले नारकों के पूर्वोक्त २१, २५, २७, २८ और २६
 प्रकृतिक, पाँच उदयस्थान होते हैं और इनमें से प्रत्येक उदयस्थान
 में ६२ और ८८ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होते हैं । तिर्यगगतिप्राप्तियों
 प्रकृतियों का बन्ध करने वाले जीव के तीर्थकार प्रकृति का बन्ध नहीं

और आहारसंयम के होते हैं। ३० प्रकृतिक उदयस्थान सम्बन्धि
 या मिथ्यादर्शियों के होता है। इन सब उदयस्थानों में ६२ और २८
 प्रकृतिक, ये दो-दो सत्तास्थान होते हैं। इसमें भी आहारसंयम के
 एक ६२ प्रकृतिक सत्तास्थान ही होता है। किन्तु नरकगतिप्राप्ति
 २८ प्रकृतियों का बंध करने वाले के ३० प्रकृतिक उदयस्थान में ६२
 ५६, ५८ और ५९ प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान होते हैं। इस प्रकार
 २८ प्रकृतिक बंधस्थान में १६ सत्तास्थान होते हैं।

10



विकलेन्द्रिय—विकलेन्द्रियों में २३ का खण्ड करने वाले जीवों में २१ और २६ प्रकृतियों के उदय में पाँच-पाँच उदयस्थान होते हैं तथा शेष चार उदयस्थानों में से प्रत्येक में ७८ के बिना गारुडार सत्तास्थान होते हैं। इस प्रकार २३ प्रकृतिक वन्यस्थान में २६ सत्तास्थान हुए। इसी प्रकार २५, २६, २६ और ३० प्रकृतिक वन्यस्थानों में भी अपने-अपने उदयस्थानों की अपेक्षा २६-२६ सत्तास्थान होते हैं। इस प्रकार विकलेन्द्रियों में पाँच वन्यस्थान में छह उदयस्थानों के कुल मिलाकर १३० सत्तास्थान होते हैं।

तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता के साथ मिथ्यादृष्टि होते हुए सम्यग्मति के योग्य २८ प्रकृतियों का वन्द्य करता है तथा ३१ के उदय में ६२, ६३ और ६६, ये तीन सत्तारथान होते हैं। ये तीनों सत्तारथान तिर्यच पंचेन्द्रिय की अपेक्षा समझना चाहिये, क्योंकि अन्यत्र पंचेन्द्रिय के ३१ का उदय नहीं होता है। उसमें भी ६६ प्रकृतिक सत्तारथान मिथ्यादृष्टि तिर्यच पंचेन्द्रियों के होता है, सम्यग्दृष्टि तिर्यच पंचेन्द्रिय के नहीं। सम्यग्दृष्टि तिर्यचों के नियम से देवद्विक का वन्द्य होने लगता

विशेषार्थ— इस माथा से पूर्व तक जानावरों आदि आठ वर्गों की
 भूमि और उतार प्रकृतियों के बंध, उदय और सत्ता स्थानों का सामान्य
 रूप से तथा जीवस्थान, गुणस्थान, गतिमार्गों और इन्द्रियमार्गों
 में निर्देश किया है। लेकिन इस माथा में कुछ विशेष संकेत करते हैं
 कि जैसा पूर्व में गति आदि मार्गों में कथन किया गया है, उतने
 साथ उनकी आठ अनुयोगद्वारों में घटित कर लेना चाहिये। इससे
 साथ यह भी संकेत किया है कि सिर्फ प्रकृतिबंध रूप नहीं किन्तु
 '— आगारेण नेयाणि' प्रकृतिबंध के साथ स्थिति, अनुभाग और
 रूप से भी घटित करना चाहिये। क्योंकि ये बंध, उदय और

यद्यपि भाषा में भिन्न-विभिन्न वर्णन किया गया है कि इसी प्र-
 यण, पदम और मत्ता रूप कर्मों का मत्ता पुनर्जन अथवा अन्त-प्र-
 का प्रकृति, भिन्न, अनुभाग और प्रदेश रूप से गति आदि मार्ग
 के द्वारा आठ अनुयोगद्वारों में विभेदन कर लेना चाहिये जैसा
 पहले वर्णन किया गया है। लेकिन इस विषय में टीकाकार आ-
 मल्यगिरि का मतव्य है कि 'यद्यपि आठों कर्मों के सन् अनुयोग
 का वर्णन गुणस्थानों में सामान्य रूप से पहले किया ही गया है अ-
 संख्या आदि सात अनुयोगद्वारों का व्याख्यान कर्मप्रकृति प्राभूत
 को देखकर करना चाहिये। किन्तु कर्मप्रकृति प्राभूत आदि
 इन काल में उपलब्ध नहीं हैं, इसलिये इन संख्यादि अनुयोग

100

पापाय—जानावरण की ओर अंतराय कर्म की कुल
 मिश्राकर उस, दर्शनावरण की ओर, वेदनीय की ओर, मिश्राकर
 मोहनीय, साम्यकर्म मोहनीय, मध्यमन की ओर, तीन वेद, चार
 आयु, नामकर्म की ओर, और उच्च मोर, ये इकतालीस
 प्रकृतियाँ हैं, जिनके उदय और उशीरणा में स्वामित्व की
 अपेक्षा विशेषता है।

विशेषाद्यं—माथा में उदय और उशीरणा में स्वामित्व की अपेक्षा
 विशेषता वाली इकतालीस प्रकृतियों के नाम बतलाये हैं। वे
 इकतालीस प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं—जानावरण की नतिजानावरण
 पाँच, अंतराय की दानान्तराय आदि पाँच तथा दर्शनावरण की

यस्यैव मनुष्यादुरः प्रमत्तगुणस्यामहादूरेणोदीरणा न भवति त्रिगुण-
एव केवलाः ।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २४२-२४३

मनुमद्विज्ञानसंयादर च मन्त्रसामुपगमादत्र ।

जसक्तिरति विरमपरं नामस्य हवति नच एमा ॥

.....समो गि के व नि गुण स्यात्तकं नाथर् मुगर् उदय-उदीरणे-असोम्य-
स्यायां सुदय एव नोदीरणा ।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २४३

पहले मिथ्यात्व गुणस्थान में अक्षरीय प्रकृतियों की बतलाने के
 लिये माथा में कहा है कि तीर्थंकरनाम और आहारकडिक—आहारक
 अक्षरी और आहारक प्रयोग—इन तीन प्रकृतियों के मिश्रण से
 ११७ प्रकृतियों का बंध होता है। इन तीन प्रकृतियों के बंध न होने
 का कारण यह है कि तीर्थंकरनाम का यह सम्यक्त्व गुण के सम्भाव
 में और आहारकडिक का बंध संयम के सम्भाव में होता है। किन्तु
 पहले मिथ्यात्व गुणस्थान में न सम्यक्त्व है और न संयम। इसीलिये
 मिथ्यात्व गुणस्थान में उक्त तीन प्रकृतियों का बंध न होकर सेष ११७
 प्रकृतियों का बंध होता है।

विशेषार्थ—इस गायत्री में गायत्री अक्षरमयं और आठवें अक्षर
करण गुणस्थान में बंधयोग्य प्रकृतियों की संख्या का निर्देश दिया है।
लेकिन यहाँ कथन दोन्नी की यह विशेषता है कि विद्युत् गायत्री में
तो किस गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बंध नहीं होता है—इसको
मुख्य मानकर बंध प्रकृतियाँ बतलाई थीं किन्तु इस गायत्री से उसे क्रम
को बदल कर यह बतलाया है कि किस गुणस्थान में कितनी प्रकृतियाँ

बाधोसा एगुणं बंधइ अट्टारसंतमनिमट्टी ।
 सत्तर सुद्धमसरागो सायममोहो सज्जोनि ति ॥५६॥

बाधोसा—बाधोस—आर्द्र, एगुणं—एक एक कम, बंधइ—
 बंध करता है, अट्टारसंतं—अट्टारसंतं, अजिपट्टी—अजिपट्टी
 गुणस्यान बाधा, सत्तर—सत्तर, सुद्धमसरागो—सुद्धमसंपराय गुण-
 रयान बाधा, सायं—सायं वेदनीय को, अमोहो—अमोहो (अमोह-
 मोह, क्षीणमोह) सज्जोनि ति—सज्जोनि केवली गुणस्यान तक ।

याधोसा गुणनं यंभद अट्टारसंतमनिमट्टी ।

सत्तर सुहमतराणो सायममोहो सजोगि ति ॥५६॥

वाक्यार्थ—याधोसा—याधोसा, गुणनं—एक एक गुण, यंभद—
यंभ करता है, अट्टारसंत—अट्टारसंत, अनिमट्टी—अनिमट्टीकार
गुणस्थान याता, सत्तर—सत्तर, सुहमतराणो—सुहमतराण गुण-
स्थान याता, सायं—साता वेदनीय वी, अमोहो—अमोहो (उपमो-
मोह, धीणमोह) सजोगि ति—समोदिकेवशी गुणस्थान तक ।

१. स्थितिभंग आदि पाँचों कायी का निवरण अनुवैकरण के प्रसंग में बताया जा चुका है, तदनुसृत्य यहाँ भी समझना चाहिये ।
२. एक आक्षेप या अन्तर्मुक्त प्रमाण भीय की ओर ऊपर की स्थिति को छोड़ कर मध्य में से अन्तर्मुक्त प्रमाण दक्षिणों को उठाकर उनका बंधने वाली अन्य सजातीय प्रकृतियों में प्रक्षेप करने का नाम अन्तरकरण है ।

पञ्चमः अथ हि अन्तःपूर्वभी भी उपपत्त्या का प्रमाण विशेष सिद्ध है वह
 यथाया है कि जो वे, पौनर्वे ओह मने सुपत्त्यामवर्ती यथापयोग धारों की
 के पञ्चम जीव जीव कागों के द्वारा अन्तःपूर्वभी पञ्चम का नियोजन
 करते हैं । किन्तु नियोजन करने समय में ही अन्तरकरण होता है जो
 न अन्तःपूर्वभी पञ्चम का उपपत्त्य ही होता है—
 पञ्चमः पञ्चमः पञ्चमः पञ्चमः पञ्चमः पञ्चमः पञ्चमः पञ्चमः पञ्चमः पञ्चमः
 करजोहि तीहि सहिमा नन्तरकरण उपपत्त्यो या ॥

३ विद्यमान कर्मोंमें से दो नियम के निर्देश प्राप्त होते हैं कि नियमाद्विष्ट एक नियमज्ञ का, नियमान्न भीष्ट सम्पत्तिविधायक दो तीनों का या नियमान्न, सम्पत्तिविधायक और सम्पत्ति, इन तीनों का तथा सम्पत्ति विहीनोपम सम्पत्ति की प्राप्ति के सम्बन्ध तीनों का उपसंग वरता है। जो जीव सम्पत्ति के कर्तृ होकर नियमान्न में प्राप्त करवत्ता का उपसंग कर पाता है, वह यदि सम्पत्ति की उद्भवता होने के क्षण में ही उपसंग सम्पत्ति की प्राप्त होता है तो उसके तीनों का उपसंग होता है। जो जीव सम्पत्ति की उद्भवता के बाद सम्पत्तिविधायक की उद्भवता होने पर यदि उपसंगसम्पत्ति की प्राप्त करता है तो उसके नियमान्न और सम्पत्तिविधायक इन दो का उपसंग होता है और जो मोक्षयोगी पञ्चमी प्रकृति की सत्ता वाला नियमाद्विष्ट होता है, उसके एक नियम का ही उपसंग होता है।

निष्पात्यस्योपशमना निष्पाद्यष्टैवेदकसाम्यगृष्टेरेव । सम्पत्तय-साम्य-
पात्ययोग्यु वेदकसाम्यगृष्टेरेव ।

—सप्ततिसप्त प्रकरण टीका, पृ० २४६

2

3

4

अथर्ववेद के मंत्रावली का उपशम करता है। पहले समय में सबसे भीड़े दलितों का उपशम करता है, दूसरे समय में अथर्ववेद दलितों का उपशम करता है। इस प्रकार अंतिम समय तक होने तक प्रति समय अथर्ववेद, अथर्ववेद दलितों का उपशम करता है तथा जिस समय जिस दलितों का उपशम करता है, उस समय दूसरे अथर्ववेद दलितों का पर-प्रकृति में शोषण करता है, किन्तु यह कम उपशम समय तक ही चालू रहता है। अंतिम समय में तो अंतिम दलितों का पर-प्रकृति में संक्रमण होता है उससे अथर्ववेद दलितों का उपशम करता है। इसके बाद एक अन्तर्मुहूर्त में श्रौतवेद का उपशम करता है। इसके बाद एक अन्तर्मुहूर्त में हार्यादि छद्म का उपशम करता है। हार्यादिपदक का

इस संबंधी विशेष भाव के लिए नमःप्रकृति टीका देवता चाहिये। यही तो संक्षेप में प्रकाश होता है।



अतः प्रत्येक कार्य के लिए आवश्यक सामान्य शक्तियों को
 नियंत्रण के द्वारा एक ही संयोजन भाग में मिलान किया
 और एक समान काम ही वास्तविक काम में वही शक्तियों का प्रयोग
 में समान प्रयोग करता है और परवर्द्धित रूप में संयोजन कर
 है। इस प्रकार संयोजन भाग का काम और प्रत्येक भाग का
 के उपयोग होने के बाद एक समान काम ही वास्तविक काम
 संयोजन भाग का उपयोग हो जाता है। जिस समय संयोजन भाग
 के साथ, उदाहरण और उदाहरण का विचार होता है, उसके अन्त
 समय में से एक संयोजन भाग की द्वितीय शक्ति से शक्तियों को लेकर
 उनकी शक्ति से एक काम के तीन भागों में से दो भाग प्रमाण प्रक
 स्थिति करके प्रदान करता है। इनमें से पहले विभाग का नाम अश्व
 कर्णकरण काम है और दूसरे विभाग का नाम किट्टीकरणक
 है। प्रथम अश्वकर्णकरण काम में पुरुष रणधर्मों से शक्तियों को लेकर
 अपूर्व रणधर्म करता है।

स्पर्धक की व्याख्या

जीव प्रति समय अनन्तानन्त परमाणुओं से बने हुए स्कंधों को

तदनन्तर मूर्धन्यवर्णन गुणस्थान के अन्तिम मगम में संज्ञाके लोभ का उपपन्न हो जाता है। इस प्रकार मोहनीय की अद्वैत प्रकृतियां उपपन्न हो जाती हैं और उसी समय आन्तवर्णन की प्राप्ति

१ अनियुक्तिवादर गुणस्थान तक उपपन्न प्रकृतियों की संख्या इस प्रकार है—

सत्तन्त्र नय य पनरस सोलम अट्टारसेव दृष्टवीता ।

एणाहि हु नउवीता पणवीमा मायरे जाण ॥

2014年12月15日

• • •

इसके बाद अनिवृत्तिकरण में प्रवेश कर जाता है। वही भी स्थिति
घात आदि कार्य पहले के समान चालू रहते हैं। अनिवृत्तिकरण के
पहले समय में दमोत्पत्तिक की दोषोत्पत्ति, विषमता और विकृति का
निर्माण हो जाता है। अनिवृत्तिकरण के पहले समय में लेकर हुआ
स्थितिसत्ता का घात हो जाने पर दमोत्पत्तिक की स्थितिसत्ता असंती
के योग्य शेष रह जाती है। इसके बाद हुआ प्रथम प्रमाण स्थिति-
सत्ता का घात हो जाने पर बहुनिद्रिय जीव के योग्य स्थितिसत्ता
शेष रहती है। इसके बाद उक्त प्रमाण स्थितिसत्ता का घात हो जाने
पर त्रिनिद्रिय जीव के योग्य स्थितिसत्ता शेष रहती है। इसके बाद पुनः
उक्त प्रमाण स्थितिसत्ता का घात हो जाने पर द्विनिद्रिय जीव के योग्य
स्थितिसत्ता शेष रहती है। इसके बाद पुनः उक्त प्रमाण स्थितिसत्ता
का घात हो जाने पर एकेन्द्रिय जीव के योग्य स्थितिसत्ता शेष
रहती है।

वस्तुवर्गो यः समुत्तो, विस्तृतो अरम्भ निर्वर्णः ।

रजोगोहयोग की क्षाया का प्रारम्भ समुत्त हो जाता है किन्तु उसकी समाप्ति प्रायेः गतिमें में होती है ।

यदि वस्तुवर्ग जीव क्षायावर्ण का प्रारम्भ करता है तो अनन्तानुबन्धी वस्तुवर्ग का क्षय हो जाने के कारण उसका मरण होना भी सम्भव है । उस स्थिति में मिथ्यात्व का उदय हो जाने से यह जीव पुनः अनन्तानुबन्धी का संघ और संकल द्वारा संनय करता है, क्योंकि मिथ्यात्व के उदय में अनन्तानुबन्धी की नियम से सत्ता पाई जाती है । किन्तु जिसने मिथ्यात्व का क्षय कर दिया है, वह पुनः अनन्तानुबन्धी चतुष्क का संनय नहीं करता है । सात प्रकृतियों का क्षय हो जाने पर जिसके परिणाम नहीं बदले वह मरकर नियम से देवों में उत्पन्न होता

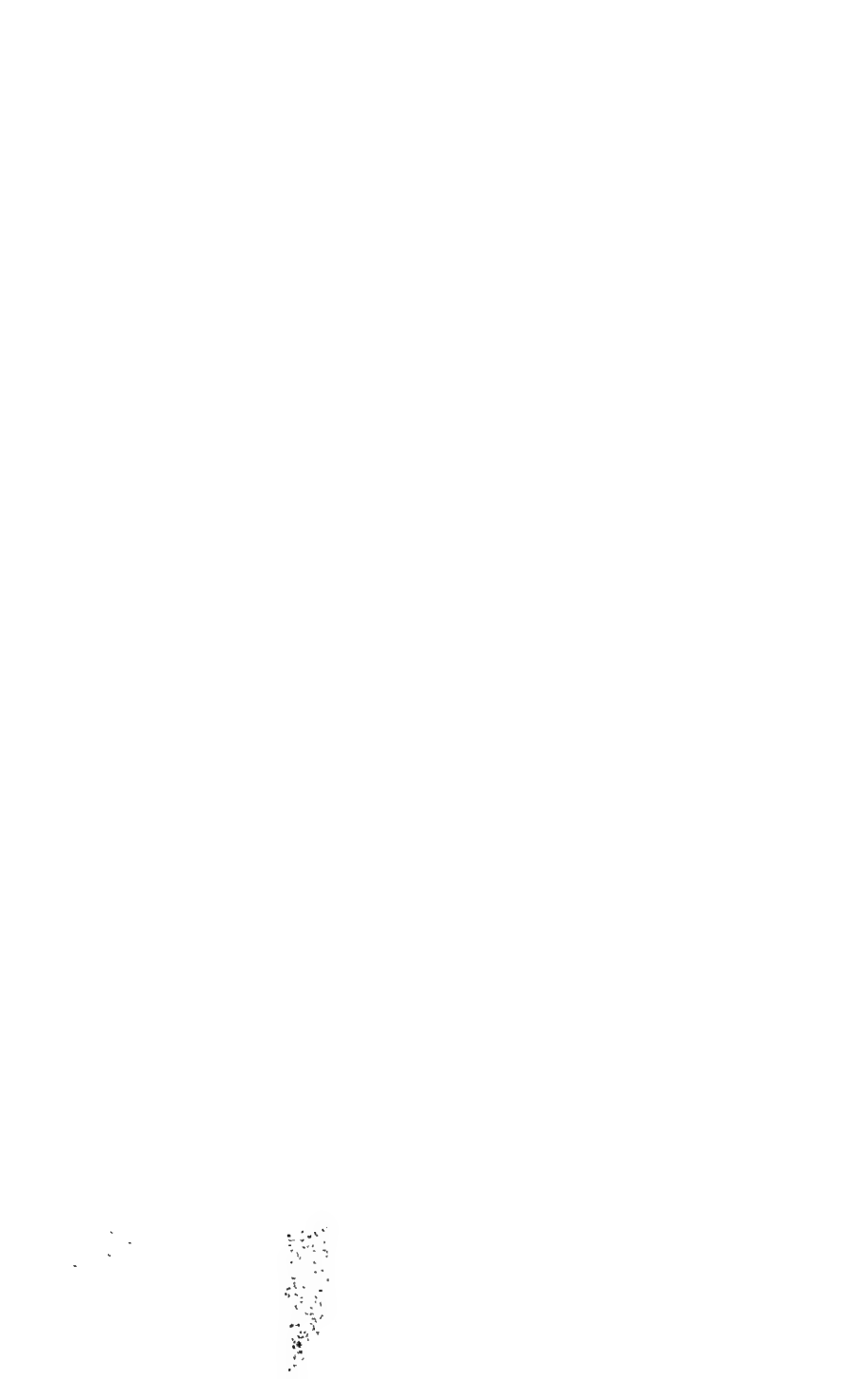
उक्त आठ प्रकृतियों का शाय होता है ।^१

- १ अनियट्टियामरे शीलमिदित्तिमनस्सत्तिरियनामाओ ।
संगेज्ज इमे सेसे तण्णाओणाओ मीयत्ति ॥
एत्तो हण्णद पत्तामट्ठगं वि.....



१ अश्वकर्मकरण काव्य—पीड़े में कान को अश्वकर्म कहते हैं। यह दूध में बड़ा और ऊपर की ओर कप में बढ़ता हुआ होता है। इसी प्रकार मिश्रण में दोष से लेकर योग तक चारों संस्करणों का अनुमान उत्तरोत्तर अनंत-गुणहीन हो जाता है, उस कारण को अश्वकर्मकरण कहते हैं। इसके आद्योत्तरण और उदयतनापवर्तनकरण, ये दो नाम और देने से मिलते हैं।

२ किट्टीकरण—किट्टी का अर्थ कुस करना है। अतः जिस कारण में पुं



एक पात्र प्रकृतियों का बतलाते हैं ।

देवगदसहगयाओ वुत्तरम समयभवियम्मि खीर्यंति ।
सविवागेयरनामा नीयागोयं वि तत्थेव ॥

वाक्यार्थ—देवगदसहगयाओ—देवगति के साथ जिनका बंध
होता है ऐसी, वुत्तरमसमयभवियम्मि—दो अन्तिम समय जितने



अन्नपरधेषणीयं मणुष्याद्य उच्चगोय नय नामे ।
 वेणु अजोगिजिणो उवकोत जहन्न एवकारं ॥६६॥

नाम्नायं—अन्नपरधेषणीयं—दो में से कोई एक वेदनीय वस्त्र
 मणुष्याद्य—मनुष्याद्य, उच्चगोय—उच्चगोय, नय नामे—नामक
 की ती प्रकृतियां, वेणु—वेदन करते हैं, अजोगिजिणो—अजोगि-

भवविपाकी, क्षेपविपाकी और जीवविपाकी का अर्थ यह है कि जो प्रकृतियाँ नरक आदि भव की प्रधानता से अपना फल देती हैं वे भवविपाकी कही जाती हैं, जैसे चारों आयु । जो प्रकृतियाँ क्षेप की प्रधानता से अपना फल देती हैं वे क्षेपविपाकी कहलाती हैं, जैसे चारों आनुपूर्वी । जो प्रकृतियाँ अपना फल जीव में देती हैं उन्हें जीवविपाकी कहते हैं, जैसे पान ज्ञानावरण आदि ।

इहाँ मनुष्यायु भवविपाकी है, मनुष्यानुपूर्वी क्षेपविपाकी और



400

100

$\frac{1}{2} \times \frac{1}{2} = \frac{1}{4}$

— 100 —





[illegible]

.....

1
 2
 3
 4
 5
 6
 7
 8
 9
 10
 11
 12
 13
 14
 15
 16
 17
 18
 19
 20
 21
 22
 23
 24
 25
 26
 27
 28
 29
 30
 31
 32
 33
 34
 35
 36
 37
 38
 39
 40
 41
 42
 43
 44
 45
 46
 47
 48
 49
 50
 51
 52
 53
 54
 55
 56
 57
 58
 59
 60
 61
 62
 63
 64
 65
 66
 67
 68
 69
 70
 71
 72
 73
 74
 75
 76
 77
 78
 79
 80
 81
 82
 83
 84
 85
 86
 87
 88
 89
 90
 91
 92
 93
 94
 95
 96
 97
 98
 99
 100
 101
 102
 103
 104
 105
 106
 107
 108
 109
 110
 111
 112
 113
 114
 115
 116
 117
 118
 119
 120
 121
 122
 123
 124
 125
 126
 127
 128
 129
 130
 131
 132
 133
 134
 135
 136
 137
 138
 139
 140
 141
 142
 143
 144
 145
 146
 147
 148
 149
 150
 151
 152
 153
 154
 155
 156
 157
 158
 159
 160
 161
 162
 163
 164
 165
 166
 167
 168
 169
 170
 171
 172
 173
 174
 175
 176
 177
 178
 179
 180
 181
 182
 183
 184
 185
 186
 187
 188
 189
 190
 191
 192
 193
 194
 195
 196
 197
 198
 199
 200
 201
 202
 203
 204
 205
 206
 207
 208
 209
 210
 211
 212
 213
 214
 215
 216
 217
 218
 219
 220
 221
 222
 223
 224
 225
 226
 227
 228
 229
 230
 231
 232
 233
 234
 235
 236
 237
 238
 239
 240
 241
 242
 243
 244
 245
 246
 247
 248
 249
 250
 251
 252
 253
 254
 255
 256
 257
 258
 259
 260
 261
 262
 263
 264
 265
 266
 267
 268
 269
 270
 271
 272
 273
 274
 275
 276
 277
 278
 279
 280
 281
 282
 283
 284
 285
 286
 287
 288
 289
 290
 291
 292
 293
 294
 295
 296
 297
 298
 299
 300
 301
 302
 303
 304
 305
 306
 307
 308
 309
 310
 311
 312
 313
 314
 315
 316
 317
 318
 319
 320
 321
 322
 323
 324
 325
 326
 327
 328
 329
 330
 331
 332
 333
 334
 335
 336
 337
 338
 339
 340
 341
 342
 343
 344
 345
 346
 347
 348
 349
 350
 351
 352
 353
 354
 355
 356
 357
 358
 359
 360
 361
 362
 363
 364
 365
 366
 367
 368
 369
 370
 371
 372
 373
 374
 375
 376
 377
 378
 379
 380
 381
 382
 383
 384
 385
 386
 387
 388
 389
 390
 391
 392
 393
 394
 395
 396
 397
 398
 399
 400
 401
 402
 403
 404
 405
 406
 407
 408
 409
 410
 411
 412
 413
 414
 415
 416
 417
 418
 419
 420
 421
 422
 423
 424
 425
 426
 427
 428
 429
 430
 431
 432
 433
 434
 435
 436
 437
 438
 439
 440
 441
 442
 443
 444
 445
 446
 447
 448
 449
 450
 451
 452
 453
 454
 455
 456
 457
 458
 459
 460
 461
 462
 463
 464
 465
 466
 467
 468
 469
 470
 471
 472
 473
 474
 475
 476
 477
 478
 479
 480
 481
 482
 483
 484
 485
 486
 487
 488
 489
 490
 491
 492
 493
 494
 495
 496
 497
 498
 499
 500
 501
 502
 503
 504
 505
 506
 507
 508
 509
 510
 511
 512
 513
 514
 515
 516
 517
 518
 519
 520
 521
 522
 523
 524
 525



2

1

2

3

4

5

6

7

8

9

10

11